



हिमप्रभा

राजभाषा पत्रिका



गोविन्द बल्लभ पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत विकास संस्थान

(पर्यावरण, वन एवम् जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा -263 643, उत्तराखण्ड

Website: <http://gbpihed.gov.in>

राजभाषा पत्रिका

• हिमप्रभा

वर्ष 2017

• संरक्षक/अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति

ई० किरीट कुमार,
प्रभारी निदेशक

• राजभाषा कार्यान्वयन समिति /सम्पादक मंडल

डा० गिरीश चन्द्र सिंह नेगी	—सदस्य
डा० वसुधा अग्निहोत्री	—सदस्य
डा० सुबोध ऐरी	—सदस्य
श्री० अनिल यादव	—सदस्य
श्री महेश चन्द्र सती	—सदस्य

कार्यकारी सम्पादक

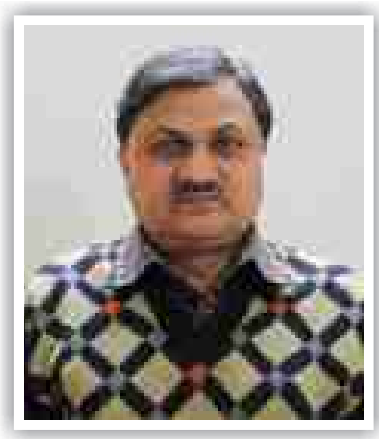
सुबोध ऐरी
09411525550
airisubodh@gmail.com

सहयोग

श्रीमती सरिता बगडवाल

• विशेष

हिमप्रभा में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आकड़ों आदि के लिए लेखक पूर्ण रूपेण स्वयं उत्तरदायी हैं। राजभाषा कार्यान्वयन समिति, का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।



प्राक्कथन

विचारों की अभिव्यक्त में निरन्तरता बनाये रखने में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। विचारों को जितनी सरल व स्वीकार्य भाषा में प्रस्तुत किया जाता है, उसका प्रभाव जनमानस पर उतना ही अधिक पड़ता है। किसी भी क्षेत्र के विकास पर चर्चा को जनसाधारण तक ले जाने हेतु एक ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है जो सर्व साधारण में मान्य हो, उनके द्वारा बोली व समझी जा सकती हो, और जिसके माध्यम से उस क्षेत्र के परितंत्र, सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक परिवेश को समझा जा सके। अतः हिंदी, जो कि

लगभग संपूर्ण भारतीय हिमालयी क्षेत्र में बोली व समझी जाती है, हिमालयी क्षेत्र के जन साधारण से जुड़ने के लिए एक उपयुक्त माध्यम है।

भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा प्रत्येक विभाग को राजभाषा के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए कुछ लक्ष्य सौंपे गये हैं। इसी दायित्व को पूर्ण करने के क्रम में यह संस्थान हिंदी भाषा के माध्यम से अपने विकास कार्यक्रमों को हिमालयी क्षेत्रों में लागू करता आया है। यह शोध एवम् विकास संस्थान वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्धारित हिंदी के मानवीकृत रूपों के प्रयोग से हिंदी में यथासंभव कार्य कर राजभाषा की अभिवृद्धि में योगदान दे रहा है। संस्थान में हिमालयी क्षेत्र के विकास के लिए अनेक शोध एवं विकास कार्य हो रहे हैं। जिसकी जानकारी जनसाधारण तक पहुंचने के लिए अधिकतम प्रशिक्षण कार्यक्रमों का माध्यम हिंदी ही रखा जाता है। संस्थान द्वारा हिंदी में अनेक प्रकाशन किये गये हैं जिससे की जन सामान्य को शोधकार्यों का लाभ मिल सके।

विज्ञान व तकनीकी से जुड़े विभिन्न पहलुओं को हिंदी में अभिव्यक्त करने की क्षमता के विकास हेतु संस्थान राजभाषा पत्रिका 'हिमप्रभा' का प्रकाशन निरन्तर करता आ रहा है। इस पत्रिका में पर्यावरणीय शोध एवं सामान्य अभिरुचि के सरल, सुबोध व सामायिक लेख एवं सुरुचि पूर्ण कविताएं संकलित की जाती हैं।

उपोक्त क्रम में, संस्थान की राजभाषा समिति, 'हिमप्रभा' के नये अंक का प्रकाशन कर रही है। मैं पत्रिका के संपादक और रचनाकारों को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि 'हिमप्रभा' जैसे सार्थक प्रयासों से राजभाषा हिंदी दिनों दिन उन्नति की ओर अग्रसर होगी एवं संस्थान द्वारा किये जा रहे शोध एवं विकास कार्यों से जनसाधारण निरन्तर लाभान्वित हो सकेंगे।

किरीट कुमार
प्रभारी निदेशक

- 1 संस्मरण . डॉ. रघुनन्दन सिंह टोलिया : एक बहुमुखी प्रतिभा
– पन्ना लाल शुक्ल 'केदारी' 01
- 2 अल्मोड़ा के सूखते जल स्रोतों का संवर्धन 04
– जीवन सिंह मेहता
- 3 जलवायु परिवर्तन का पर्वतीय महिलाओं की पोषण स्थिति पर प्रभाव 07
– रेनू जेठी, कुशाग्रा जोशी एवं निर्मल चंद्रा
- 4 पाला एवं बचाव 13
– नवीन कुमार बोहरा
- 5 कुजा (रोज़ा बूनोनी) के मूल्य वर्धित उत्पाद: कुल्लू घाटी की महिलाओं में अतिरिक्त आजीविका का एक साधन 15
– सरला शाशनी, शीतल शर्मा, शेर सिंह सामंत एवं आर० सी० सुन्दरियाल
- 6 पर्वतीय सतत कृषि विकास में मधुमक्खी एवं अन्य कीट परागणकर्ताओं का योगदान 18
– किशोर कुमार, शेर सिंह सामंत, जी० सी० एस० नेगी एवं रनवीर सिंह रावल
- 7 कृषि में श्रम प्रयुक्ति विज्ञान द्वारा कार्य सरलीकरण 23
– कुशाग्रा जोशीए रेनु सनवालएरेनु जेठी एवं निर्मल चन्द्रा
- 8 मानव-वन्यजीव संघर्ष : एक आंकलन 29
– प्रकाश सिंह एवं आर० सी० सुन्दरियाल
- 9 ग्रामीण सूचना प्रणाली द्वारा हिमालय के ग्रामीण परिवेश का विकास 35
– दीपिका बिष्ट एवं राकेश कुमार सिंह
- 10 हिप्पोपी तिबेताना (सी-बकथ्रोन) – एक बहुउपयोगी प्रजाति 38
– अंजली बरोला, अमित बहुखंडी, रनवीर सिंह रावल एवं इन्द्र दत्त भट्ट
- 11 कंप्यूटर द्वारा हिंदी टाइपिंग एवं हिंदी अनुवाद 41
– राकेश कुमार सिंह एवं आर. सी. प्रसाद
- 12 मेदा (पालिगोनेटम वर्टीसिलेटम) एक बहुउपयोगी पादप प्रजाति 46
– रेनू सुयाल एवं रनवीर सिंह रावल

13 परम्परागत खाद्य फसल मडुवा— वर्तमान आवश्यकता एवं भविष्य परिदृश्य	50
— मुकेश देवराड़ी, डी.एस. बिष्ट, देवेन्द्र सिंह, चौहान कमलेश चन्द्र एवं डी.एस. रावत	
14 खरसू ओक (<i>क्वेरकस सेमीकार्पिफोलिया</i>) में प्राकृतिक पुनर्जनन की समस्या	53
— मीनाक्षी नेगी एवं रनवीर सिंह रावल	
15 पिन वैली नेशनल पार्क हिमांचल प्रदेश: एक पहचान	55
— अमित बहुखण्डी एवं के.सी.सीकर	
16 पर्वतीय क्षेत्र में कृषि जैव—विविधता के संरक्षण हेतु सांस्कृतिक व पारम्परिक पहल	59
— दीप्ती तिवारी, एस0एन0ओझा एवं आर० सी० सुन्दरियाल	
17 चारा प्रजाति संग्रहण पद्धति में ऊर्जा व्यय एवं आय संरक्षण में महिलाओं का योगदान पश्चिमी हिमालय के प्ररिपेक्ष्य में	63
— भास्कर चन्द्र जोशी, के.सी.सीकर एवं रविन्द्र जोशी	
18. कविताएं	67

संस्मरण

डॉ० रघुनन्दन सिंह टोलिया : एक बहुमुखी प्रतिभा

पन्ना लाल शुक्ल 'केदारी'
राज्य सचिवालय, देहरादून, उत्तराखण्ड

चौड़ा मुंह, गठा शरीर, उत्साह से भरपूर, चमत्कारी व्यक्तित्व, विलक्षण प्रतिभा के धनी डॉ. रघुनन्दन सिंह टोलिया आज हमारे बीच नहीं हैं, यकीन नहीं होता। मैं चंद खुश नसीब लोगों में हूँ, जिन्हें उनका सानिध्य प्राप्त हुआ। मैंने हमेशा उन्हें व्यस्त देखा। पहाड़ के प्रति प्रेम, समर्पण और उत्साह उनके कार्यों एवं लेखों में समाहित है।

डॉ. टोलिया का जन्म 15 नवम्बर 1947 को देहरादून में हुआ। मूलतः पिथौरागढ़ में मुन्स्यारी के जनजाति परिवार से संबंधित इनका पर्वतीय क्षेत्र के प्रति गहरा लगाव था। जनश्रुति है— “सौ संसार एक मुन्स्यार”। वास्तव में ऐसे ही थे डॉ. रघुनन्दन सिंह टोलिया। पिता दीवान सिंह टोलिया विशेष पुलिस बल में अधिकारी थे, जबकि माता साधारण गृहणी थी, तीन भाई तथा एक बहिन में रघुनन्दन बाल्यकाल से कुशाग्र—बुद्धि थे। इनकी शिक्षा—दीक्षा इलाहाबाद, आगरा एवं कुमायूँ विश्वविद्यालय में हुई।

भारतीय प्रशासनिक सेवा उत्तर प्रदेश कैडर के 1971 बैच के अधिकारी डॉ. टोलिया 35 वर्ष तक एकीकृत उत्तर प्रदेश, भारत सरकार और तदनन्तर उत्तराखण्ड में अनेकानेक महत्वपूर्ण एवं संवैधानिक पदों पर आसीन रहे, जहाँ जाते प्रभाव छोड़ते। 01 सितम्बर, 2003 को मुख्य सचिव का पदभार हस्तान्तरित करते हुए तत्कालीन मुख्य सचिव श्री मधुकर गुप्ता के शब्द उनके प्रशासनिक अनुभव को बयां करते हैं —“मुझे खुशी है कि उत्तरांचल संरक्षित एवं सुरक्षित हाथों में है”। पहाड़ से लगाव के कारण अक्टूबर 2005 में उन्होंने भारत सरकार के सचिव पद को नजरअंदाज कर नवगठित उत्तराखण्ड सूचना आयुक्त का दायित्व संभाला, जहाँ उनके कार्यों की भूरि—भूरि प्रशंसा हुई। अक्टूबर 2010 में मुख्य चुनाव आयुक्त का कार्यकाल समाप्त होते ही शासकीय सेवाओं में उनकी सक्रिय भागीदारी समाप्त हो गयी।

इसके उपरांत मुन्स्यारी में उन्होंने अधिकांश वक्त गुजारा, किन्तु अस्वस्थता के कारण दिल्ली मैक्स हास्पिटल में 06 दिसम्बर, 2016 को उनका निधन हो गया। अंतिम यात्रा में सम्मिलित न होने का मुझे व्यक्तिगत दुख है। डॉ० टोलिया का निधन पहाड़ की अपूर्णीय क्षति है वे अपनी धर्मपत्नी तथा दो बेटियों को छोड़ गए। बेटियों से उन्हें बेहद लगाव था। उनका परिवार सुसंस्कृत था— बिना भेद—भाव आगन्तुकों को समान रूप से आतिथ्य दिया जाता। जो आता, बिना चाय—नाश्ता किए नहीं लौटता था।

परिश्रम उनके रग—रग में था और मेहनतकश लोगों से स्वाभाविक घुल—मिल जाते थे। उनका मानना था कि सफलता का मूलमंत्र परिश्रम है। सुबह 8 बजे उठकर देर रात्रि 2 बजे तक व्यस्त रहने वाले डॉ. टोलिया जैसा ऊर्जावान व्यक्तित्व कम देखने को मिलता है। वह कार्यों के निष्पादन में अनुकूल सुविधाओं एवं परिस्थितियों के पक्षधर थे। मुख्य सचिव कार्यकाल में औपचारिकताओं को छोड़कर कार्मिकों तथा विभागीय

समस्याओं के लिए समय निश्चित किया गया था, यहाँ तक कि अनुपलब्ध चरित्र प्रविष्टियों पर सामान्य नियमों के तहत पदोन्नतियाँ दी गईं और विभागों का पुनर्गठन कार्य अभियान के रूप में चलाया गया। उपस्थित व्यक्ति पर सहज विश्वास करने वाले और समकक्षीय अधिकारियों में "रघू" तथा "टाईगर" उपनाम से विख्यात डॉ. टोलिया खुश-मिजाज, जीवट और सामाजिक जीवन में खुले विचार वाले व्यक्ति थे। शोधार्थी, एकेडमीशियन, लेखक एवं दार्शनिक मित्रों से घिरे रहने वाले डॉ. टोलिया पार्टियों के शौकीन थे, किन्तु घर में आते ही लेखन और विचारों में खो जाते थे। सदैव व्यस्त रहने वाले डॉ. टोलिया परिवार को यथोचित समय नहीं दे सके, जिसका उन्हें एहसास था।

डा. टोलिया प्रदेश की भौगोलिक स्थिति के अनुरूप कार्य संस्कृति के विकास में उन्नत तकनीकी के अधिकाधिक उपयोग के पक्षधर और योजना का लाभ बिना अवरोध उपभोक्ता तक पहुंचाने के लिए प्रयासरत रहे – किंचित् बाधक नियमों-परिनियमों से खीज उठते थे। उनका विचार था कि पत्रावलियों के घुमाव के बजाय सूचनाओं को अधिकाधिक डिजिटलाइज किया जाय और अनावश्यक पेपर वर्क के स्थान पर कम पेपर वर्क किया जाय जिसे न्यूनतम तक जारी रखा जाय, ताकि धन, समय तथा परिचरण की समस्या से निपटा जा सके।

पलायन के प्रति उनकी स्वाभाविक चिन्ता थी और आर्थिक कारणों को इसका जिम्मेदार मानते थे। विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए स्थानीय स्वैच्छिक संगठनों की सहभागिता को वह आवश्यक समझते थे और इसके अनुरूप योजनाएं तैयार करते थे। समय-समय पर स्थापित बैम्बू एवं फाइबर बोर्ड, उत्तराखण्ड आर्गनिक कमोडिटी बोर्ड, कृषि विपणन बोर्ड, बायो फ्रूट बोर्ड, चाय विकास बोर्ड, भेड़ एवं ऊन बोर्ड, पशुधन विकास बोर्ड, जड़ी-बूटी केन्द्र, सुगंध पौध केन्द्र आदि में क्षेत्रीय सहभागिता सुनिश्चित कर व्यापारिक उपयोग का ध्यान रखा गया। प्रदेश के विकास के लिए जल विद्युत परियोजनाओं के निर्माण पर उनका सकारात्मक दृष्टिकोण था। अत्यधिक शहरीकरण के विरोधी डॉ. टोलिया गाँवों की स्वाभाविक दिनचर्या के प्रसंशक थे।

खान-पान में अत्यन्त सरल थे और देश-काल के अनुसार जो मिल जाय, खाते थे। पहाड़ी दालें, अचार, जूस, शहद, ग्रीन टी तथा आर्गनिक उत्पादों का शौक से उपभोग करते थे। कड़ी-चॉवल के साथ भुनी-मिर्च बेहद पसंद थी, जिसके लिए चिकित्सक की सलाह को नजरअंदाज करते थे। आत्मबल इतना ऊंचा था कि ठान लेने पर दृढ निश्चय करते थे। प्रजापति ब्रह्मकुमारियों का प्रतिनिधि मण्डल एक बार उनसे मिला और किसी बुरी आदत को छोड़ने का अनुरोध किया। डा. टोलिया सिगरेट का शौक रखते थे और उसी समय परित्याग कर दिया। पान मसाला और पान का भी अल्पकाल सेवन किया। रूढ़िवादी परम्पराओं में उन्हें विश्वास नहीं था, तथापि किसी की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाते थे और ऐसे कार्यक्रमों में असहज रहते थे। वैज्ञानिक रूप से प्रमाणिक सामाजिक मान्यताओं पर उनका विश्वास था। व्यक्ति को महत्व देते थे, किन्तु औपचारिकता नापसंद थी।

डॉ. टोलिया प्रखर वक्ता, कुशल शिक्षक और सरल स्वभाव के कारण जनप्रिय थे। सप्ताहांत में प्रायः फील्ड विजिट करते थे। प्राकृतिक एवं स्वाभाविक तस्वीरें लेने का शौक था। अपना लैपटॉप हमेशा साथ रखते और स्वयं विचार लिखते थे। उन्नत तकनीकी एवं प्रशिक्षण के पक्षधर थे। कार्यपद्धति के सुधार के लिए प्रशिक्षण के महत्व को जानते थे। प्रशिक्षण का उन्हें लम्बा अनुभव था। तत्समय जहाँ प्रशासनिक अधिकारी प्रशिक्षण संस्थानों में तैनाती से बचते थे, डा0 टोलिया ग्राम्य विकास प्रशिक्षण संस्थान, बख्शी का तालाब, लखनऊ तथा

प्रशासनिक प्रशिक्षण अकादमी, नैनीताल में पूर्ण मनोयोग से रहे। इस अवधि में उनके द्वारा राजकीय कार्मिकों के प्रशिक्षणों के लिए योजनाएं तैयार की तथा पुस्तकें, वर्कशाप, मॉनोग्राफ, स्टेट्स पेपर, आर्टिकल्स, रीडिंग मैटीरियल तथा ट्रेनिंग मैटीरियल तैयार कराया गया। प्रशासनिक अकादमी नैनीताल में उनके योगदान के दृष्टिगत सरकार द्वारा अकादमी के साथ डॉ० आर.एस. टोलिया का नाम जोड़ दिया गया है। उत्तराखण्ड सूचना आयोग को भी वर्तमान स्वरूप देने का श्रेय डॉ० टोलिया को जाता है।

पर्वतीय क्षेत्र के अनुकूल योजनाएं तैयार करने में उन्हें महारत हासिल थी। देश के सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेशों के भ्रमण के साथ ही डॉ. टोलिया पर्वतीय भौगोलिक परिस्थितियों वाले दक्षिण एशिया, पूर्वोत्तर, यूरोपीय तथा उत्तर अमेरिकी देशों में गए और वहाँ की सुदृढ़ आर्थिकी का अध्ययन किया तथा तत्संबंधी साहित्य लेकर उत्तराखण्ड के परिप्रेक्ष्य में योजनाएं बनाईं। सामाजिक जीवन में ईसीमोड, रतन टाटा ट्रस्ट, चिया जैसी लोक कल्याणकारी संस्थाओं के विशेष परामर्शी रहे और बाद में एनटीपीसी चेयर तथा आईएमआई में सक्रिय भागीदारी रही।

पहाड़ के प्रति डॉ. टोलिया का समर्पण प्रेरणादायी हैं। निसंकोच, मैंने जिस रूप में उन्हें देखा, उसी के अनुरूप विचार व्यक्त किए, मेरे लिए अल्पकाल भी उन्हें विस्मृत करना असंभव है। इस लेख से किंचित् किसी की भावनाएं आहत हुई हों, तो क्षमा प्रार्थी हूँ।

अल्मोड़ा के सूखते जल स्रोतों का संवर्धन

डा० जीवन सिंह मेहता
ओकहाउस, पोखरखाली, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

जल मानव बसासत की मूलभूत एवं अनिवार्य आवश्यकता अनादि काल से ही रहा है। इस क्रम में अल्मोड़ा की बसासत का भी महत्व समझा जा सकता है। यह निर्विवाद सत्य है कि जल संचयन की स्थानीय स्थापत्य कला की अद्भुत तकनीक का प्रयोग हमें कुमाऊँ क्षेत्र के पर्वतीय भू-भाग की विशिष्ट भू संरचना के कारण नौलों के रूप में दिखता है। यहाँ की भू-संरचना में अत्यधिक आड़ी तिरछी दारारों के कारण उत्पन्न जल स्रोतों का प्रयोग कत्यूरियों के सुव्यवस्थित शासन काल से ही दिखने लगा था। कत्यूरियों के शासन के उपरान्त चन्द शासकों ने अपना राज-काज कई शताब्दियों तक कुमाऊँ के पूर्वी छोर पर बसे चम्पावत नगर से ही चलाया। परन्तु प्रशासनिक एवं सामरिक दृष्टिकोण से बालो कल्याण चंद ने 1563 में राजधानी चम्पावत से अल्मोड़ा स्थान्तरित की। इस निर्णय में अल्मोड़ा के इर्द-गिर्द पानी की प्रचुर उपलब्धता की अहम् भूमिका रही। इस क्षेत्र में समय-समय पर भिन्न-भिन्न राजाओं ने महल, इमारत, किले, बगीचे, मन्दिर, रास्ते, नौले एवं धारे बनवाये। धीमे-धीमे अल्मोड़ा नगर व चंद राज्य का क्रमिक विकास व विस्तार होता गया। चंद राजाओं ने चम्पावत में भी एक से एक सुन्दर पुरातात्विक महत्व के अद्भुत शैली के मन्दिर नौले धारे व किले बनवाये। इनमें बालेश्वर व मानेश्वर के मन्दिर तथा नौलों में एक हथिया का नौला तथा संग्राम सिंह कार्की का नौला बहुत प्रसिद्ध है।

प्राचीन काल से ही परम्परागत रूप से जल की आवश्यकता, शुद्धता, संचय, संग्रहण, संरक्षण का भारी महत्व रहा है। जल को देवता के रूप में देखा जाता है। सभी सभ्यताओं के जन्म, विकास और विलुप्ति की कहानी जल के चारों ओर ही घूमती है। सारे चराचरों और जैव विविधता का अस्तित्व जल पर ही निर्भर है। मनुष्य का शरीर पंचतत्वों से बना है। इनमें जल तत्व का भारी महत्व है। इसी लिये हर नौले में जल देवता विष्णु या अन्य देवी देवताओं की मूर्ति स्थापित रहती है।

जल संचयन की यह तकनीक स्थानीय एवं पारम्परिक स्थापत्य कला का महत्वपूर्ण पक्ष है। प्राकृतिक जल स्रोत की पहचान कर वहाँ पर एक गढ़वा खोदकर जल संग्रहण हेतु एक 5'x4' के कक्ष का निर्माण किया जाता है। गहराई सामान्यतः 2 से 3 फीट होती है। पत्थरों से सीढीदार चिनाई की जाती है। चौड़ाई व लम्बाई भूतल से ऊपर की ओर बढ़ते क्रम में 5 इंच की सीढी के साथ होती है अन्ततः यह कक्ष वर्गाकार कुंड का आकार ले लेता है। चारों ओर पत्थर की दीवाल से घेर कर ढालदार पटाल की छत से ढक दिया जाता है एवं सामने की ओर खुला रखा जाता है। पटाल बिछाकर दोनों ओर पत्थर की दीवाल से विस्तार दिया जाता है। नौले में पानी भर जाने पर इन्ही पटालों व नाली से जल बाहर निकाल दिया जाता है जिसका उपयोग कृषि कार्य में किया जाता है।

स्थान विशेष व जलस्रोत की क्षमता के अनुसार नौलों व धारों का आकार, प्रकार, डिजाइन तय होता है। पूरे कुमाऊँ में एक से एक सुन्दर नौले धारे जगह-जगह निर्मित हैं: धारा नौला, चम्पा नौला, सोनारी नौला,

डुपकिया, खोल्टा, ढुंगाधारा, पोखरखाली, रानीधारा, चौंसार, पाण्डेखोला, लक्ष्मेश्वर सिद्ध का नौला, मोतिया धारा, गोपाल धारा। नगर से बाहर भी कई नौले व धारे हैं जिनमें प्रमुख स्यूनराकोट का नौला, खूंट का नौला, हवालबाग का नौला इत्यादि हैं।

इधर पिछली शताब्दियों में जब से अल्मोड़ा शहर को शैल बल्ढौटी, स्याही देवी तथा कोसी नदी से पम्पिंग द्वारा जल आपूर्ति होने लगी है। नौलों के रखरखाव से ध्यान हटने लगा है। और आज तो शहरीकरण के दौर में लोग ही नौलों का विध्वंस करने में लगे हैं। और अब तो जिस जल के कारण नौलों धारों का अस्तित्व है, वही तेजी से मानवीय हस्तक्षेप, प्रकृति से छेड़-छाड़ गहरे हैंड पम्प, ट्यूब वैल एवं जलवायु परिवर्तन के कारण घटता चला जा रहा है।

यहाँ पर यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि पूरे विश्व के धरातल पर 71 प्रतिशत जल है। इसका 97 प्रतिशत खारा सेलाइन जल है। केवल 3 प्रतिशत स्वच्छ साफ पीने योग्य जल है। इस 3 प्रतिशत का भी 77 प्रतिशत आर्कटिक, अन्टार्कटिक व हिमनदों के रूप में जमा (फ्रीज्ड) है। शेष 23 प्रतिशत जमीन के अन्दर व बाहर नदियों, झरनों, तालाबों, धारों और नौलों के रूप में है। मजेदार बात यह है कि 3 प्रतिशत में से केवल 0.4 प्रतिशत शुद्ध जल ही झीलों, दलदल, आकाश, नदी, नालों, झरनों, तालाबों व धारों के रूप में उपलब्ध है। इस प्रकार आमतौर से देखा जाय तो समुद्री जीवों को छोड़, मानव एवं अन्य प्राणी जगत केवल इस 0.4 प्रतिशत पानी पर ही निर्भर एवं जीवित हैं। जो कि समय के साथ-साथ घटता और प्रदूषित होता जा रहा है। आशंका है, अगला विश्व युद्ध पानी के लिये ही होगा।

जल के 0.4 प्रतिशत से और निचले स्तर पर घटने की वैश्विक समस्या के विविध कारण हैं। इनका असर पर्वतीय क्षेत्र में भी दिखाई देता है। स्थानीय स्तर पर अल्मोड़ा व आस पास के नदी, नालों, गधेरों, नौलों, धारों व जल श्रोतों पर भी पड़ा है और जमीन के अन्दर के पानी का भी जल स्तर घटा है। एक अध्ययन के अनुसार कोसी (कौशिकी) नदी $4\frac{1}{2}$ किलोमीटर प्रतिवर्ष की दर से सूख रही है। जल स्तर एवं जल प्रवाह घटने के प्रमुख कारण निम्नवत् हैं:-

1. जलवायु परिवर्तन -1848 में यूरोप में औद्योगिक क्रांति के पश्चात पूरी धरती का तापक्रम बढ़ने की गति तीव्र हो गई है। प्राकृतिक संसाधनों के साथ मानव ने अपनी व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि के लिये बड़ी निर्दयता से व्यवहार किया है। और सामूहिक स्वार्थपूर्ति के लिये तो और भी विकट रूप से हिमालय में उत्तराखण्ड के साथ बहुत क्रूरता के साथ छेड़छाड़ की है।
2. शहरीकरण की प्रक्रिया वर्तमान में बहुत तेजी से बढ़ रही है। सभी क्षेत्र और सभी लोग सीमेंट कंक्रीट, लोहे और उपभोक्तावाद के जंगल के मकड़जाल में निरन्तर फंसते चले जा रहे हैं। पूरे हिमालय में नदी घाटियों, पर्वतीय ढलानों, गधेरों, खेतों, जंगलों, बुग्यालों से होते हुए मोटर सड़कों का जाल बिछ चुका है। अल्मोड़ा तथा आस-पास का क्षेत्र भी अछूता नहीं है। सड़क निर्माण में निकले मलवे को उसी स्थान पर ढाल में धकेल दिया जाता है। यह सब विशाल भूस्खलन और बाढ़ को जन्म देता है। जल सोखने वाली मिट्टी की पकड़ कमजोर होने के कारण वह जरा सी वर्षा में बहकर पर्वतों को काटते चीरते घाटियों गधेरों व नदियों के रास्ते मैदानी भागों की ओर बह जाती है। यह सब जल श्रोतों के नैसर्गिक प्रवाह पथ को प्रभावित कर

अन्ततः जलापूर्ति में कमी कर देती है। साल दरसाल वन प्रान्तरों में लगने वाली आग जैव विविधता का सर्वनाश करते हुए धरती के जल को सुखा देती है। जंगल की आग एवं विघटनकारी परिस्थितियों के कारण चीड़ के वनों के साथ मिलान वाले क्षेत्रों में ऊँचाई की ओर बॉज व नीचे की ओर साल वन, चीड़ वनों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। जो कि जल स्रोतों के सुखने के कारण संकटमय भविष्य के लिये खतरे की घंटी है। प्लास्टिक का तांडव जहाँ भी बसासत है वहाँ और उसके आस-पास खेत, नदी-नालें, गधेरें, गलियाँ, बाजार आदि सब प्लास्टिक के कचरे जिससे वर्षा का जल धीमे-धीमे मिट्टी में ज़ब्ब होकर जल स्तर बढ़ाने में अक्षम है।

दरअसल आज मानव धरती माँ को ठीक से समझने और आत्मीयता से मित्र बनाने के बजाय उसे अपना गुलाम बनाने के लिये आतुर है। अपनी स्वार्थपरता के लिये मानव नदी, नालों, गधेरों और जल स्रोतों को उनके नैसर्गिक पूर्ति प्रवाह पथ पर प्रवाहित होने में रुकावट डाल रहा है। इस प्रकार मानव द्वारा प्रकृति से छेड़छाड़ और जलवायु परिवर्तन का प्रतिफल है कि जल स्रोत तेजी से सूख रहे हैं। अल्मोड़ा और आस-पास के नौलें, धारे और जलस्रोत भी अछूते नहीं हैं। अब यदि बसासते को यहाँ रहना है, तो इन परम्परागत स्रोतों और नौलों को पुनर्जीवित करने के लिये भगीरथ प्रयास करने होंगे। तेजी से सूखते और अवकृष्ट होते इन जल स्रोतों को पुनर्जीवित करने के लिये अनुशासित होकर कुछ महत्वपूर्ण कदम यथाशीघ्र उठाने होंगे:-

- (1) हर जल स्रोत एवं नौले के जलागम क्षेत्र को जल अभ्यारण्य घोषित किया जाना चाहिये। नौले धारे के जलागम की सार्वजनिक भूमि में चौड़ी पत्ती के वृक्ष यथा- बॉज (*Quercus leucotrichophora*), लटुवा बॉज (*Quercus lanuginosa*), फल्यॉट (*Quercus glauca*), उतीस (*Alnus nitida*), तेज पात (*Cinnamomum tamala*), मूंगा सिल्क (*Litsaea polyantha*), गूलर (*Ficus glomerata*), तिमिल (*Ficus roxburghii*), शिलिंग (*Osmanthus fragrans*), पंय्या (*Prunus cerasoides*), खडिक (*Celtis australis*), आदि के वृक्षों का रोपण किया जाना चाहिये। ज्ञातव्य रहे कि एक बांज का परिपक्व वृक्ष लगभग 750 ली० जल अपनी जड़ मिट्टी प्रणाली में संरक्षित करता है। यह जल धीमे-धीमे आस-पास के नौलों और धारों को पुनर्जीवित करता है।
- (2) वृक्षारोपण के अतिरिक्त अल्मोड़ा के दोनों ओर प्रवाहित होने वाली कोसी (कौशिका) एवं सुआल नदियों के बीच के सारे क्षेत्र के आरक्षित वनों, वन पंचायतों, सिविल वनों, सिटोली, बलढोटी, सिमतौला, कलमटिया, बिन्सर, धौलछीना, बाडेछीना, सिराड, गणानाथ, अल्मोड़ा कैंट, देवाली आदि के वनों, सार्वजनिक भूमि, गौचर पनघट, ग्रामीण स्कूलों, कॉलेजों, मन्दिर परिसर, गधेरों, आदि में जल और मिट्टी के संरक्षण एवं संवर्धन के कार्य को तुरन्त हाथ में लेना चाहिये। इस कार्य को यांत्रिक एवं जैविक विधि से एक व्यवस्थित रणनीति के तहत तुरन्त एक अभियान के रूप में सामूहिक प्रयास एवं जन भागीदारी से युद्ध स्तर पर किया जाना चाहिए। इसके लिये कोसी घाटी आथोरिटी का गठन किया जाना चाहिए जो प्रदेश स्तर पर नदी घाटी आथोरिटी से जुड़ा हो। उक्त कार्यों का नेतृत्व जिलाधिकारी /अध्यक्ष जिला परिषद द्वारा किया जाना चाहिए। नगर क्षेत्र में नगर पालिका एवं कैंटोमेंट एवं ग्रामीण क्षेत्र में ग्राम सभापति स्कूलों, संस्थानों के प्रमुखों को बढ-चढकर जनता का सहयोग लेकर आगे आना चाहिए। इस कार्य में स्थानीय कुशल कारीगरों को शामिल किया जाना चाहिए। पारम्परिक नौलों, धारों व अन्य जल स्रोतों का यदि मूल रूप में जीर्णोद्धार, संरक्षण एवं संवर्धन हो जाये तो न केवल आत्म निर्भरता व जल स्तर ही बढेगा अपितु पारिस्थितिकी पर्यटन को भी बढावा मिलेगा।

जलवायु परिवर्तन का पर्वतीय महिलाओं की पोषण स्थिति पर ड़भाव

रेनू जेठी, कुशाग्रा जोशी एवं डा० निर्मल चंद्रा
विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

पर्वतीय क्षेत्रों में संसार की कुछ सबसे बहुमुल्य संसाधनों के होते हुए भी यहाँ की अधिकतर जनसंख्या की आर्थिक स्थिति निम्न स्तर की है। आज भी यहाँ एक बड़े क्षेत्र में जीवन निर्वाह हेतु ही कृषि की जाती है। इन पर्वतीय समुदायों को न ही हरित क्रांति का फायदा हुआ और न ही वे वैश्विक आर्थिक विकास द्वारा लाभान्वित हुए। दुनिया के किसी भी क्षेत्र की तुलना में पहाड़ी क्षेत्रों को सबसे अधिक पर्यावरण परिवर्तन के परिणामों का सामना करना पड़ रहा है। यह पहाड़ी क्षेत्र पर्यावरण परिवर्तन के सूचक के रूप में भी कार्य करता है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूस्खलन, अत्यधिक वर्षा, भूकंप, अत्यधिक टंड व अक्सर सूखा की स्थिति जैसे प्राकृतिक आपदाओं के प्रति अति संवेदनशील है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में अधिकतर वर्षाश्रित खेती की जाती है जो प्रायः स्थानीय सूखा व अत्यधिक वर्षा से प्रभावित होती है। पर्वतीय क्षेत्रों में मिट्टी की कम उर्वरकता व फसलों में अधिक बीमारियों के कारण फसल उत्पादकता बहुत कम है। मौसम के लगातार बदलाव के परिणामस्वरूप पर्वतीय क्षेत्रों के अधिकतर जल स्रोतों में पानी की मात्रा में समग्र कमी आई है। बढ़ते तापमान के कारण वन जैव विविधता में बदलाव आ गया है।

पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका

वैसे तो पर्वतीय क्षेत्रों के लोग हजारों सालों से कठिन परिस्थितियों में रहते हैं और उन्होंने खतरों में भी जीना सीख लिया है। परन्तु वर्तमान में पर्यावरण परिवर्तन इतनी तेजी से हुआ है कि यह सामाजिक व आर्थिक चिंता का विषय बन गया है, जिसका समाधान अति आवश्यक है। समाज में प्रचलित महिलाओं और पुरुषों की भिन्न-भिन्न भूमिकाओं के कारण पर्यावरण परिवर्तन का असर भी उन पर भिन्न-भिन्न है। यद्यपि दोनों जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हैं परन्तु उनके काम करने की प्रवृत्ति, संसाधनों की उपलब्धता और परिवर्तनों से निपटने की उनकी क्षमताओं के कारण परिवर्तन का असर भी भिन्न होता है। उत्तराखण्ड में महिलाओं को पर्वतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। मैदानी क्षेत्रों के विपरीत पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं को ईंधन, चारा व पानी लाने के लिए ऊँचे-नीचे रास्तों में कई किलोमीटर चलना पड़ता है जो पारंपरिक रूप से महिलाओं से जुड़ा हुआ है। पर्वतीय कृषि में महिलाओं की अधिक व महत्वपूर्ण भूमिका है, जिस कारण पर्यावरण परिवर्तन का सबसे अधिक व प्रतिकूल प्रभाव महिलाओं पर पड़ रहा है। कृषि कार्यों में महिलाएँ रोपाई, निराई-गुड़ाई, कटाई और खाद्य प्रसंस्करण जैसी अधिक श्रम व समय लेने वाली गतिविधियों में संलग्न रहती हैं। कृषि उत्पादन में कमी, सिंचाई की कमी, प्रायः सूखा पढ़ने व कृषि व्यवसाय में नुकसान के कारण अधिकतर पुरुष वर्ग ने शहरों की ओर पलायन किया है। इस पलायन के कारण महिलाओं पर गृह-कार्य, कृषि, पशुपालन का अतिरिक्त भार बढ़ गया है। महिलाओं को प्रायः ईंधन व चारा लाने के लिए कई किलोमीटर प्रतिदिन चलना पड़ता है। इन परिवर्तनों के कारण पारंपरिक फसलों जैसे मडुवा, गहत, गडेरी, आलू के क्षेत्रफल में कमी आयी है। पर्वतीय कृषि इन परिवर्तनों के कारण कम लाभदायक साबित हो रही है। पहले पर्वतीय क्षेत्रों में कई प्राकृतिक जल

स्त्रोत थे, जिनका उपयोग पीने के पानी अथवा सिंचाई के लिए किया जाता था परन्तु पिछले एक दशक के दौरान इन जल निकायों में भारी कमी आई है। घरों में जल प्रबंधन का कार्य मुख्यतः महिलाओं द्वारा किया जाता है। जलवायु परिवर्तन के कारण कई प्राकृतिक जल स्रोत सूख गये हैं जिस कारण महिलाओं को प्रायः पानी लाने हेतु 10–15 किमी. तक का सफर तय करना पड़ता है। पर्वतीय क्षेत्रों की यह विडंबना है कि पर्याप्त वर्षा व कई जल स्रोतों के होने के बावजूद भी यहाँ सिंचाई के अलावा पीने के पानी की कमी है।

महिलाओं की स्वास्थ्य व पोषण स्थिति

एक शोध के अनुसार महिलाओं द्वारा व्यस्ततम मौसम के दौरान 8 से 9 एवं हल्के मौसम के दौरान 4–5 घण्टे कृषि कार्य किया जाता है। विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों से यह पता चलता है कि महिलाएँ प्रतिदिन 14–18 घण्टे काम करती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में लम्बी दूरी तक बोझ ढोने व लम्बे समय तक कठिन कृषि कार्य करने के कारण महिलाएँ ज्यादातर पीठ के निचले हिस्से में दर्द महसूस करती हैं। धान की खेती के दौरान पौध प्रत्यारोपण हेतु अधिक समय तक पानी व कीचड़ में काम करने की वजह से महिलाओं में गठिया, पेट दर्द और परजीवी के संक्रमण की घटनाएँ बढ़ जाती हैं। महिला के स्वास्थ्य का असर पूरे परिवार पर पड़ता है। अस्वस्थ महिलाएँ प्रायः अस्वस्थ व कम वजन के शिशुओं को जन्म देती हैं। महिलाओं के स्वास्थ्य का असर परिवार की अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है। पर्वतीय क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं का कार्य बोझ बढ़ा है जिससे स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं में वृद्धि हुई है। महिलाओं की पोषण संबंधी स्थिति कई कारकों पर निर्भर करती है जैसे कि भोजन का सेवन, परिवार की आय, स्वास्थ्य देखभाल और समाज में महिलाओं की स्थिति। एक अध्ययन में यह गणना की गई कि विभिन्न कृषि व घरेलू कार्यों पर प्रतिदिन पुरुषों द्वारा 2457 किलो कैलोरी व महिलाओं द्वारा 2505 किलो कैलोरी उर्जा व्यय की जाती है। जबकि पुरुषों द्वारा अनुमानित 3270 किलो कैलोरी व महिलाओं द्वारा 2410 किलो कैलोरी का सेवन किया जाता है। वैसे तो कुपोषण सभी वर्गों में प्रचलित है परन्तु महिलाओं में कुपोषण बचपन से ही शुरू हो जाता है और जीवन भर महिलाएँ कुपोषण से ग्रसित रहती हैं। विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा किए गये एक शोध में यह पाया गया कि अधिकतर महिलाओं द्वारा आहार में संस्तुत मात्रा से कम दालों, सब्जियों, हरी सब्जियों व फलों का सेवन किया जा रहा है।

महिलाओं हेतु पोषण सुरक्षा का महत्त्व

एक स्वस्थ शरीर को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि संतुलित आहार का पालन किया जाए। संतुलित आहार का तात्पर्य उस आहार से है जो हमारी पोषण की स्थिति, आयु, लिंग एवं गतिविधि के स्तर के आधार पर हमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज के अलावा कैलोरी प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति को कैलोरी (उर्जा) की आवश्यकता उसकी आयु, लिंग, पोषण की स्थिति पर निर्भर करता है। शरीर के संतुलित वजन को बनाये रखने के लिए शरीर द्वारा कैलोरी का सेवन न तो बहुत कम होना चाहिए और न ही बहुत ज्यादा। स्वस्थ एवं संतुलित आहार विभिन्न खाद्य समूहों जैसे मोटे अनाज, दालें, सब्जियों, दूध और दूध के बने उत्पादों, मांस, चीनी व तेल का आहार के सेवन करने से प्राप्त होते हैं। महिलाओं को अपने आहार का विशेष देखभाल की जरूरत है क्योंकि उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक शारीरिक परिवर्तन सहने पड़ते हैं। महिलाओं के शरीर को कई जैविक बदलावों से गुजरना पड़ता है, जिस कारण महिलाओं को ऐनीमिया, हड्डियों के कमजोर होने और ऑस्टियोपोरोसिस जैसी बीमारियों का सामना करना पड़ता है। इन बीमारियों से उबरने के लिए

महिलाओं के शरीर को आयरन, मैग्नीशियम, कैल्शियम, विटामिन डी, विटामिन बी जैसे विभिन्न पोषक तत्वों की जरूरत पड़ती है। महिलाओं को अपने आहार में बदलाव करना चाहिए। इसके लिए सुबह, दिन व रात के आहार में बदलाव कर अलग-अलग पोषक तत्वों से भरपूर भोजन करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए गेहूँ की रोटी की जगह कभी-कभी मंडुवा, बाजरा, मक्का के आटे की रोटी खाई जा सकती है। पर्वतीय क्षेत्रों में बनाई जाने वाली लेसी रोटी भी बहुत पौष्टिक होती है। संतुलित आहार लेकर महिलाएँ सभी परिवर्तनों के समय भी स्वस्थ रहती हैं। महिलाओं को विभिन्न पोषक तत्वों का उपयुक्त मात्रा में सेवन करना चाहिए।

प्रोटीन

महिलाओं को पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन का उपयोग करना चाहिए क्योंकि यह मांसपेशियों के उत्तकों को टूटने से रोकने एवं क्षतिग्रस्त उत्तकों की मरम्मत में मदद करता है। सामान्य वयस्क महिला को 55 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन लेना चाहिए। जबकि गर्भावस्था के समय 15 ग्राम प्रोटीन अतिरिक्त लेना चाहिए। यानि 70 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन। दालें, सूखे मेवे, मीठ, मछली एवं अण्डा प्रोटीन के अच्छे स्रोत हैं। पन्त (2002) के अनुसार मध्य हिमालय की ग्रामीण महिलाओं द्वारा औसत ऊर्जा उपभोग मानक आवश्यकता से कम है जो कि शरीर द्वारा प्रोटीन के उपयोग पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

विटामिन

शरीर के लिए कौन-कौन से विटामिन जरूरी है यह जानना भी जरूरी है।

- विटामिन ए आँख की रोशनी और इम्यून सिस्टम को सुधारता है।
- विटामिन बी 1 नर्वस सिस्टम की कार्यप्रणाली को सामान्य बनाता है।
- विटामिन बी-2 भी आँखों की रोशनी को बढ़ाने में फायदेमंद है।
- विटामिन बी-3 त्वचा संबंधी दिक्कतों को दूरस्त करने में सहायक होता है।
- विटामिन बी-6 मानसिक स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद है।
- फौलिक ऐसिड शरीर में सही रक्तसंचार के लिए आवश्यक है।
- विटामिन -सी त्वचा, बालों और इम्यूनिटी के लिए जरूरी है।
- विटामिन - डी कैल्शियम के अवशोषण व हड्डियों को मजबूत बनाने में सहायक होता है।
- विटामिन -ई शरीर में मौजूद कोशिकाओं के लिए सुरक्षा कवच है और तनाव को दूर करने में सहायक होता है।
- विटामिन के शरीर में खून जमने की समस्या को दूर करता है।
- विटामिन बी- 12 हमारी कोशिकाओं में पाए जाने वाले जीन डीएनए को बनने और उनकी मरम्मत में सहायता करता है। हमारी लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण भी इसी से होता है। यह शरीर के सभी हिस्सों के लिए अलग-अलग तरह के प्रोटीन बनाने का भी काम करता है। शाकाहारी महिलाओं को अपने खानपान का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। उनके पास विटामिन बी-12 हासिल करने के स्रोत सीमित संख्या में होते हैं, इसलिए उन्हें दूध, दही, पनीर, चीज, मक्खन, सोया मिल्क टोफू का नियमित रूप से सेवन करना चाहिए। नॉन-वेजिटेरियन (मांसाहारी) लोगों को अंडा, मछली, मीट, मुर्गा और सी-फूड से विटामिन बी-12 भरपूर मात्रा में मिल जाता है।

- फोलिक एसिड एक प्रकार का विटामिन बी है जो लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक सामान्य महिला को अपने आहार में 200 माइक्रोग्राम प्रतिदिन एवं गर्भावस्था में 500 माइक्रोग्राम फोलिक एसिड प्रतिदिन लेना चाहिए। फोलिक एसिड का अच्छा स्रोत हरी पत्तेदार सब्जियाँ एवं सूखी फलियाँ हैं।

खनिज पदार्थ

सभी खनिज पदार्थों में कैल्शियम की आवश्यकता सबसे अधिक होती है। यह हड्डी एवं दांत के लिए बहुत जरूरी खनिज है। महिलाएँ विशेष रूप से ऑस्टियोपोरोसिस के लिए अति संवेदनशील होती हैं। गर्भावस्था के दौरान इसकी आवश्यकता दोगुनी हो जाती है। दूध एवं दूध से बने उत्पाद और मंडुवा कैल्शियम के अच्छे स्रोत हैं। महिलाएँ अक्सर कैल्शियम की गोली लेती हैं परन्तु बिना अन्य पोषक तत्वों के अधिक मात्रा में केवल कैल्शियम युक्त चीजें या इसकी गोलियाँ खाने से हड्डियाँ कमजोर हो सकती हैं। अतिरिक्त कैल्शियम जोड़ों के बीच जम जाता है और इससे आर्थाइटिस और किडनी सम्बन्धी बीमारियों की आशंका बढ़ जाती है। कैल्शियम के पाचन के लिए विटामिन- ए और डी के अलावा प्रोटीन और सोडियम की सही मात्रा की जरूरत होती है। इसके लिए सब्जियाँ और फल खाना चाहिए। विटामिन- डी हमें धूप से भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

महिलाओं के लिए एक संतुलित आहार अधूरा है जब तक की उसमें पर्याप्त मात्रा में आयरन नहीं है। कम आयरन या लोह तत्व के सेवन से अनीमिया होने की संभावना बढ़ जाती है। भारत जैसे विकासशील देश एवं मुख्यतः पर्वतीय राज्यों में गर्भवती महिलाओं में अनीमिया की शिकायत आम बात है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, चुकन्दर, बादाम, अखरोट, सेम, गुड़, मछली, मीट और अण्डे आयरन के मुख्य स्रोत हैं। इसके अलावा विटामिन- सी भी शरीर में लोहे के अवशोषण को बढ़ाता है। विटामिन- सी शरीर को संक्रमण से लड़ने में मदद करता है। सामान्य वयस्क महिला को अपने आहार में 40 मिली ग्राम एवं स्तनपान के समय 80 मिली प्रतिदिन लेना चाहिए। आंवला, अमरूद, खट्टे फल जैसे संतरे विटामिन- सी के अच्छे स्रोत हैं।

रेशेदार पदार्थों की भी शरीर में उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि अन्य पोषक तत्वों की। भोजन में मौजूद पदार्थ शरीर की पाचन शक्ति को मजबूत करने के साथ साथ शरीर के विभिन्न अंगों को मजबूती भी प्रदान करते हैं। प्रायः गाँव की अपेक्षा शहरों में रेशेदार भोजन की कमी से होने वाले रोग अधिक देखने को मिलते हैं। शहरों में लोग आटे से चोकर निकालकर या चोकर रहित आटा प्रयोग में लाते हैं। आहार में साबुत दालें, छिलके सहित फल, चोकर सहित रोटी, अंकुरित सलाद आदि का प्रयोग करना चाहिए।

आई.सी.एम.आर द्वारा कृषि में कार्यरत महिलाओं को मध्यम कार्यभार वाले वर्ग में शामिल किया गया है।

पर्वतीय क्षेत्रों में अपने पारम्परिक ज्ञान के कारण महिलाएँ बीज संरक्षण का कार्य भी भली भाँति करती हैं। जलवायु परिवर्तन की दशा में यह पारम्परिक बीज संरक्षण का ज्ञान बहुत ही लाभदायक सिद्ध होता है। आज भी पर्वतीय कृषि हेतु 80-90 प्रतिशत बीज की मांग पारम्परिक बीज द्वारा की जाती है। महिलाओं को समय समय पर उन्नत फसल प्रजातियों की जानकारी प्राप्त करा अधिक कृषि क्षेत्र उन्नत बीज के अर्न्तगत लाया जा सकता है जिससे पर्वतीय कृषि को लाभकारी बनाया जा सकता है। इन उन्नत प्रजातियों को अपनाकर पर्वतीय क्षेत्रों में फसल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। पोषक एवं पारंपरिक फसल किस्मों का उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ कृषि वैज्ञानिकों द्वारा बायोफॉर्टिफाइड फसलों एवं किस्मों के उत्पादन को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

तालिका-1. आई.सी.एम.आर द्वारा मध्यम कार्यभार वाली महिलाओं हेतु अनुशंसित आहार सेवन (2010)

पोषक तत्व	मध्यम कार्यभार वाली महिलाओं हेतु
ऊर्जा(किलो कैलोरी)	2230
प्रोटीन(ग्राम)	55
कैल्शियम (मिली ग्राम)	600
आयरन (मिली ग्राम)	21
बीटा कैरोटीन (माइक्रो ग्राम)	4800
थाइमिन (मिली ग्राम)	1.1
राइबोफलेविन (मिली ग्राम)	1.3
नायसिन (मिली ग्राम)	1.4
विटामिन-सी (मिली ग्राम)	40

तालिका-2. आई.सी.एम.आर द्वारा प्रस्तावित खाद्य समूह (2011)।

खाद्य समूह	पोषक तत्व
अनाज और दालें चावल, गेहूँ, रागी (मंडूवा), मक्का, अरहर, उड़द, चना, राजमा, लोबिया, मटर	ऊर्जा, प्रोटीन, वसा, विटामिन बी-1, विटामिन बी-2, आयरन, फोलिक एसिड, फाइबर
दूध एवं पशु उत्पाद दूध, पनीर, अण्डा, मीट, मछली	प्रोटीन, वसा, विटामिन बी-1, कैल्शियम व आयरन
सब्जी व फल आम, अमरुद, पपीता, संतरा, पालक, चौलाई, धनिया, मैथी, गाजर, बैंगन, भिंडी, बीन, शिमला मिर्च, प्याज, टमाटर, फूलगोभी आदि	केरोटिनोइड, विटामिन सी, फाइबर, विटामिन बी-2, फोलिक एसिड, कैल्शियम, आयरन
तेल, वसा व नट्स मक्खन, घी, रिफाइन्ड तेल, सरसों का तेल, सूरजमुखी का तेल, गुड़, चीनी, बादाम, अखरोट आदि	ऊर्जा, वसा, प्रोटीन

मानव अधिकारों की वैश्विक घोषणा (1948) का अनुच्छेद 25 (1) के अनुसार हर व्यक्ति को अपने और अपने परिवार का बेहतर जीवन-स्तर बनाने, स्वास्थ्य की स्थिति प्राप्त करने का अधिकार है जिसमें भोजन-कपड़े और आवास की सुरक्षा शामिल है। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ) ने 1965 में अपने संविधान की प्रस्तावना में घोषणा की कि मानव समाज की भूख से मुक्ति सुनिश्चित करना उनके बुनियादी उद्देश्यों में से एक है।

तालिका-3. विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित पोषण युक्त फसलों की उन्नत प्रजातियाँ।

खाद्यान फसलें	कदन्न फसलें	दलहनी फसलें	तिलहनी फसलें	सब्जी फसलें
धान वी एल धान 208 वी एल धान 209 वी एल धान 154 वी एल धान 85 वी एल धान 86 विवेक धान 62 वी एल धान 65 गेहूँ वी एल गेहूँ 832 वी एल गेहूँ 892 वी एल गेहूँ 907 वी एल गेहूँ 953 मक्का विवेक संकुल मक्का 31 विवेक संकुल मक्का 35 विवेक क्यू पी एम 9 वी एल अम्बर पॉपकॉर्न	मडुवा वी एल मडुवा 315 वी एल मडुवा 324 वी एल मडुवा 347 वी एल मडुवा 352 साँवा / मादिरा वी एल मादिरा 181 वी एल मादिरा 207	मसूर वी एल मसूर 129 वी एल मसूर 133 वी एल मसूर 514 गहत वी एल गहत 8 वी एल गहत 15 वी एल गहत 19 राजमा वी एल राजमा 63 वी एल राजमा 125 अरहर वी एल अरहर 1	सोयाबीन वी एल सोया 47 वी एल सोया 59 वी एल सोया 63 वी एल सोया 65 मूंगफली वी एल मूंगफली 1 तोरिया वी एल तोरिया 3	लहसुन वी एल लहसुन 1 वी एल लहसुन 2 उगल वी एल उगल 7 प्याज वी एल प्याज 3 बीन वी एल बीन 2 सब्जी मटर विवेक मटर 10 विवेक मटर 11

आहार में पर्याप्त मात्रा में फाईबर, दालें, साबुत अनाज, चोकर युक्त आटा की रोटियाँ एवं फल सब्जियों को शामिल करना चाहिए। खाद्य पदार्थों में तेल, चीनी व नमक का सीमित मात्रा में प्रयोग होना चाहिए। प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का सीमित व ताजे मौसमी फलों एवं सब्जियों का ज्यादा प्रयोग करना चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रों में अकसर देखा जाता है कि महिलाएं अधिक चाय का सेवन करती हैं। चाय या कॉफी में कैफीन पाया जाता है जो कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम और विटामिन डी जैसे खनिज पदार्थों को शरीर में अवशोषित होने से रोकता है।

महिलाओं में होने वाले कुपोषण का मुख्य कारण पोषण संबंधी जानकारी का अभाव व अपर्याप्त संतुलित आहार है। पहाड़ी क्षेत्र में महिलाओं की पोषण स्थिति एवं पोषण सम्बंधी ज्ञान असंतोषजनक है। कुपोषण के कारण कार्य क्षमता व अर्जन क्षमता में कमी आती है फलस्वरूप गरीबी उत्पन्न होती है और यही क्रम चलता रहता है।

पाला एवं बचाव

नवीन कुमार बौहरा
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

उत्पादन के क्षेत्र में कृषि के नवीन तौर तरीकों एवं साधनों के समुचित तथा उन्नत बीजों के प्रयोग द्वारा हाल के वर्षों में आशाजनक सफलता मिली है। फसलों की बुवाई से कटाई तक अनेक प्रकार की बाधाएं आती हैं जिनसे फलोत्पादन प्रभावित होता है। इन कारणों से होने वाली संभावित हानि को कम से कम करके फलोत्पादन को सफल एवं लाभकारी बनाने हेतु हर संभव प्रयास करने की आवश्यकता है।

सर्दी के मौसम में प्रायः सभी फसलों पर पाले का हानिकारक असर पड़ता है तथा विभिन्न प्रकार की फसलें इससे प्रभावित होती हैं। पाला संभवतः दिसम्बर से जनवरी के दूसरे सप्ताह तक पड़ता है तथा रबी की मुख्य फसलें तथा सरसों, चना, धनिया, मटर, आलू, एवं सब्जियों आदि को क्षति पहुंचाती है। पाले के कारण कई बार संपूर्ण फसल ही नष्ट हो जाती है तथा किसानों को भारी मात्रा में हानि भी होती है।

पाला पड़ने के लक्षण :

पाला पड़ने का अनुमान पूर्व में ही दिन के वातावरण के आधार पर लगाया जा सकता है। सर्दी के दिनों में जिस दिन दोपहर से पहले ठंडी हवाएं चलती रहे तथा हवा का तापमान जमाव बिंदु से नीचे गिर जाए तथा दोपहर बाद अचानक हवा चलनी बंद हो जाए एवं आसमान साफ रहे तो पाला पड़ने की संभावना रहती है। इसी प्रकार आधी रात के बाद से ठंडी हवाएं चलनी लगे और आस पास का पानी पपड़ी के रूप में दिखने लगे तो पाला पड़ने की संभावना होती है।

फसल पर पाले का प्रभाव किसी भी अवस्था में हो सकता है परंतु फूल एवं फल बनने तक की अवस्था अधिक संवेदनशील होती है। इसी प्रकार यदि देशी एवं विलायती बबूल, आक आदि की कोमल पत्तियां तथा टहनियां झुलसी हुई नजर आने लगे तो रात को विशेषकर तीसरे एवं चौथे प्रहर पाला पड़ने की संभावना रहती है, परंतु मात्र शीतलहर की हवा से पौधों को नुकसान नहीं होता है।

पाले के प्रभाव से पौधों की कोमल पत्तियां एवं फूल झूलस जाते हैं तथा सड़ने लगती हैं। पौधों की कोशिकाओं का जल टंड की अधिकता के कारण बर्फ में बदल जाता है, इस कारण कोशिका झिल्ली फट जाने से कोशिका मर जाती है तथा इसे ही पाला पड़ना कहते हैं। पालाग्रस्त पौधों की पत्तियां झूलस जाती हैं। फूल सड़ जाते हैं तथा कच्चे दाने सिकुड़ जाते हैं। पाले के प्रभाव से फलियों एवं बालियों में दाने नहीं बनते तथा बन रहे दाने सिकुड़ जाते हैं। दाने वजन में हल्के भी हो जाते हैं तथा इस प्रकार उपज में भारी कमी हो जाती है।

पाले से सुरक्षा :

पाले का पूर्वानुमान करके फसलों को बचाना चाहिए। पाले का बचाव मुख्यतः पूर्वानुमान की सत्यता पर ही निर्भर करता है अन्यथा श्रम एवं अर्थ का व्यर्थ ही अपव्यय होता है। पाले से फसलों की रक्षा करने हेतु अनेक सामायिक विधियां हैं जिनसे पाले के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। कुछ विधियां इस प्रकार हैं—

1) **रसायनो का प्रयोग करके** : पाला पडने की संभावना होने पर तनु गंधक का अम्ल 1 लीटर लेकर 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर एक हैक्टैयर खेत से छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर दौहराना चाहिए। इस प्रकार के छिड़काव से सरसों, चना, मटर आदि में लौह तत्व की रासायनिक सक्रियता बढ़ जाती है। इससे पौधों में रोग प्रतिरोधी क्षमता में वृद्धि होती है तथा साथ ही फसल भी जल्दी पकती है। गंधक के अम्ल के अतिरिक्त डाई मिथाईल सल्फोक्साइड 78 ग्राम लेकर 700 से 800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से भी पाले का हानिकारक प्रभाव कम किया जा सकता है।

2) **धुआ करके** : असिंचित एवं सिंचित दोनों प्रकार के क्षेत्रों में रात्रि 11 बजे बाद हवा के रूख के अनुसार सामान्यतः उत्तरी पश्चिमी दिशा से आने वाली ठंडी हवा के बहाव की दिशा में खेत के कई स्थानों पर धुआं करने से पाले से रक्षा की जा सकती है। धुआं करने से खेत के उपर धुएं की परत बन जाने से तापमान शून्य डिग्री से 0 तक पहुंच नहीं पाता तथा फसल पाले से बच जाती है।

धुआ करने के लिए खेतों के किनारे अथवा मेढों से सूखी घास फूस, पेड़ों की सूखी टहनियां, पत्तियां, कूड़ा करकट इकटठा कर गोबर के उपलों आदि के साथ जलाकर धुआ करते हैं। धुएं से वायुमंडल के दबाव में कमी आती है तथा तापक्रम कम नहीं होता है। धुआं अच्छी तरह से खेत में फैलना चाहिए तथा मध्य रात्रि से प्रातः तक रहना चाहिए।

3) **सिंचाई द्वारा** : पाले से रक्षा में सिंचाई भी लाभप्रद है सीमित क्षेत्र में हल्की सिंचाई के कारण वातावरण में नमी की मात्रा बढ़ जाएगी तथा फसलों को पाले से क्षति नहीं पहुंचेगी। परंतु इस प्रकार की सिंचाई केवल उन स्थानों पर ही की जा सकती है जहां पानी प्रचुरता में हो।

4) **कृत्रिम रूप से छाया करके** : नर्सरी (सब्जी फल एवं वृक्षों की) तथा किचन गार्डन के कोमल पौधे पाले से अधिक प्रभावित होते हैं तथा इस प्रकार के सीमित क्षेत्रों में उगायी जाने वाली वनस्पति को पाले से बचाने के फसलों को टाट, पॉलीथीन या घास फूस की पतली परत से ढक देना चाहिए। इसके अलावा वायुरोधी टाटियां (पर्दे) भी बांधना लाभकारी रहता है।

5) **वायुरोधक वृक्ष लगाकर** : पाले से फसलों को स्थायी रूप से बचाने हेतु खेत की उत्तरी एवं पश्चिमी मेड़ों पर उचित दूरी पर वायुरोधक पेड़ जैसे – बबूल, शीशम एवं जामुन आदि लगाने चाहिए जिससे पाले एवं ठंडी हवाओं से बचाव हो सके।

6) **अन्य उपाय :**

- बुआई के समय में परिवर्तन कर फसलों को पाले से बचाया जा सकता है। फसलों की बुआई इस प्रकार करनी चाहिए जिससे जनवरी फरवरी के मध्य में फूल एवं फलियां न बने, पौधे के ये भाग ही पाले के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।
- इन किस्मों को पाले के प्रति संवेदनशील क्षेत्रों में लगाया जाना चाहिए।
- मृदाओं में कार्बनिक खादों तथा गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद व हरी खाद का प्रयोग समय समय पर करने से मृदाओं से जलधारण क्षमता बढ़ जाती है तथा उसका ताप भी बढ़ जाता है जिससे पाले से कुछ बचाव हो सकता है।

इन उपायों से पाले का प्रभाव फसलों पर कम करने एवं फलोत्पादन बढ़ाने में मदद मिलती है।

कुजा (रोज़ा ब्रूनोनी) के मूल्य वर्धित उत्पाद: कुल्लू घाटी की महिलाओं में अतिरिक्त आजीविका का एक साधन

सरला शाशनी¹, शीतल शर्मा¹, डा० शेर सिंह सामंत¹ एवं डा० राकेश चन्द्र सुन्दरियाल²

¹ गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
हिमाचल ईकाई, मोहल कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

² गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

1. परिचय

कुजा, हिमाचल प्रदेश के कुल्लू ज़िले में पाया जाने वाला गुलाब प्रजाति का एक जंगली पौधा है। पुरे विश्व में गुलाब की कई प्रजातियां पाई जाती है जिसमें की कुजा (रोज़ा ब्रूनोनी) हिमालयन क्षेत्रों में पाए जाने वाली प्रजातियों में से एक है। हिमाचल प्रदेश के 12 जिलों में से एक कुल्लू जिला 31°58'00"अक्षांश व 77°06'4" रेखांश पर 5503 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ है। समुद्रतल से इसकी उंचाई 1000 मीटर से लेकर 6600 मीटर तक है। इसे वर्ष 1963 में पूर्ण जिले का दर्जा प्राप्त हुआ। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 4,37,903 है जिसमें 2,25,452 पुरुष व 2,12,451 स्त्रियां हैं तथा लिंग अनुपात 942 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष है। 2001 से लेकर 2011 के दशक में जिले की जनसंख्या में 14.76 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। कुल्लू जिले के हर गांव मे देवी या देवता का स्थान होने के कारण यह 'देव' भूमि के नाम से भी प्रसिद्ध है। कृषि कुल्लू वासियों का मुख्य व्यवसाय है तथा जिले की जलवायु शुष्क व सर्द है। वर्षा समस्त जिले में सीमित होती है सामान्यत 100–137 सैन्टीमीटर तक होती है। अधिकतर वर्षा जुलाई, अगस्त व जनवरी में होती है। 5,000 फुट व इससे ऊपर स्थित स्थलों का मौसम जलवायु के आधार पर बहुत ही अच्छा होता है। कई उंचाई वाले स्थानों में बर्फबारी भी होती है।

पुराने ज़माने से हमारे समाज में एक धारणा है कि महिलाओं का काम सिर्फ घर की चार दीवारी में परिवार एवं बच्चों का पालन पोषण ही है और आज भी 21वीं शताब्दी में भी यह धारणा ज्यादा बदली नहीं है। आज भी महिलाएं अपने हक के लिए लड़ रहीं हैं और आज भी लडका ओर लडकी में अन्तर किया जाता है। कुल्लू जिले के ग्रामीण परिवेश में भी महिलाओं की भागीदारी ज्यादातर घर के कामों में और गैर आर्थिक कार्यों में है। कुल्लू घाटी की महिला का दैनिक कार्य औसतन 11 से 12 घण्टे का होता है। एक अनुमान के मुताबिक कुल्लू घाटी के ग्रामीण क्षेत्र की महिला का दिन का 6 से 8 घण्टे का समय घर के कार्यों जैसे कि खाना बनाना, पानी भरना तथा ईंधन की लकड़ी इकट्ठा करने में निकल जाता है। इतना करने के बाद उनके पास फिर कुछ और करने का समय ही नहीं रहता। इसी संदर्भ में हमारा प्रयास इन महिलाओं को एक साथ लाकर उन्हीं के आस-पास के परिवेश में पाए जाने वाले जंगली गुलाब अर्थात कुजा (रोज़ा ब्रूनोनी) का मूल्य संवर्धन करके विभिन्न उत्पाद बना कर उनकी आर्थिक उन्नति करने हेतु है।

2. सामग्री एवं विधि

कुजा (रोज़ा ब्रूनोनी) से बनी उत्पादों का उद्योग के रूप देने हेतु संस्थान ने कुल्लू घाटी के विभिन्न गांवों में महिलाओं के स्वयं सहायता समूह (सेल्फ हेल्प ग्रुप) बनाए। वर्तमान में 8 महिला स्वयं सहायता समूह में कुल 103 महिलाएं हैं। प्रत्येक इसके महिला स्वयं सहायता समूह की महिलाओं को कुजा की गुणवत्ता तथा सतत कटाई तकनीकों एवं उसका किस तरह से भंडारण किया जाए इसकी जानकारी दी गई। इस जानकारी के बाद आगे किस तरह से कुजा के उत्पाद बना कर उसका मूल्य संवर्धन किया जाए यह बताया गया।



चित्र 1 क. कुजा के बीजों की सफाई करती महिलाएं ख. कुजा के बीजों को बेचती महिलाएं

इन महिलाओं के समूह से कुल 12,5000 रु. मूल्य के कुजा के बीज, 55 रु0 प्रति किलोग्राम के दर से खरीदा गया। इन बीजों के एक-एक करके मूल्य संवर्धन प्रक्रियाओं के तहत गुजार कर कई तरह की हर्बल चाय का निर्माण किया गया तथा प्रयोगशाला में विभिन्न मानकों पर परीक्षण किया गया। बचे हुए अन्दर के बीजों से भी सुपरक्रिटिकल (CO₂) मेथड से तेल निकाला गया तथा उसका भी विभिन्न मानकों पर परीक्षण किया गया।

3. परिणाम एवं विवेचन

परियोजना के पहले साल में कुल 1,25,000 रु0 मूल्य के बीज इन महिला समूहों से खरीदे गए तथा प्रथम वर्ष के अंत तक लगभग 1,80,000 रु. मूल्य के उत्पादों की बिक्री हो गई थी जो अगले वर्ष में लगभग दोगुना



चित्र 2 क. हर्बल चाय

ख. हर्बल चाय बैग

ग. कुजा के बीजों का तेल

होने की सम्भावना है। प्रथम वर्ष में महिलाओं द्वारा कुजा के बीजों को बेचने से यह आय 150 रु से लेकर 11,330 रु प्रति महिला तक थी। कुजा के बीजों की छंटाई के लिए एक तरह की मशीन का भी निर्माण किया गया जो एक घण्टे में लगभग 200 किलो ग्राम बीजों की छंटाई करता है जबकि इसके विपरित व्यक्तिगत स्तर पर सिर्फ 3 से 4 किलो ग्राम बीजों की छंटाई पुरे दिन में की जाती थी।

हर्बल चाय के परिक्षण में हमने पाया की कुजा के चाय में एंटीआक्सीडेन्ट एक्टिविटी, फिनोलीक, फ्लेवेनॉइड, एसकोरबीक एसिड गुण काफी अच्छी मात्रा में है। बीजों से प्राप्त तेल लगभग 4.2 प्रतिशत था तथा इसमें फेटी एसिड सी 16:0, पालमेटिक एसिड 5.56%, सी18:0 अधीक सिट्रिक एसिड 3.18%, सी 16:1 ओलीक एसिड 10.71%, सी18:2 लिनोलेनिक एसिड 56.77% और सी18:3, 6, γ लिनोलेनिक एसिड 11.33% पाया गया जो कि आज तक के गुलाब के कई सूचित स्पीशीज में सबसे अधिक है।

4. निश्कर्ष

परियोजना के पहले वर्ष के अनुभव के आधार पर हमने पाया कि समुह की महिलाओं में नए उत्साह का संचार हुआ है और उन्हें देख कर अन्य महिलाएं भी इस कार्य से जुड़ना चाहती हैं। कुजा के सतत कटाई तकनीकों के लिए भी प्रोटोकॉल तैयार किया गया जिसके कारण कुजा का उसके पारिवरिक पर्यावरण में संरक्षण हो सके। बनाए गए उत्पादों को बिक्री के लिए महिलाओं द्वारा संचालित माउन्टेन बाउंटी नामक दुकान में रखा गया जिससे काफी अच्छी प्रतिक्रिया मिल रही है।

कुजा के बीजों के तेल में पाए गए तत्वों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनका उपयोग कई तरह के व्यक्तिगत देखभाल एवं सौंदर्य सम्बन्धी उत्पादों के निर्माण में किया जा सकता है। साथ ही साथ कुल्लू घाटी की ग्रामीण महिलाओं की आजीविका का एक नया साधन भी बन सकता है। लेकिन अभी भी भविष्य में इस कार्य को सतत तरीके से करने के लिए कई प्रकार के शोध कार्य करने की आवश्यकता है।

5. आभार

लेखक संस्थान के हिमाचल ईकाई, मोहल-कुल्लू (हिमाचल प्रदेश) में उक्त शोध कार्य हेतु आधारभूत सुविधायें प्रदान करने के लिए निदेशक, गोविन्द बल्लभ पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड के आभारी हैं। साथ ही साथ विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली के भी आभारी हैं जिन्होंने इस अनुसंधान कार्य के लिए वित्तीय सहायता दी।

पर्वतीय सतत कृषि विकास में मधुमक्खी एवं अन्य कीट परागणकर्ताओं का योगदान

डा० किशोर कुमार¹, डा० एस० एस० सामंत¹, डा० गिरीश चन्द्र सिंह नेगी² एवं डा० रनवीर सिंह रावल²

¹ गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
हिमाचल ईकाई, मोहल कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

² गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

परागणकर्ता (पोलीनेटर) वैश्विक जैव विविधता के मुख्य घटक हैं। मधुमक्खी एवं तितलियां किसी भी स्थान विशेष की जैव विविधता सूचक प्रजातियां हैं और ये उस क्षेत्र में पुष्पी पादपों के होने का संकेत करती हैं। परागणकर्ता पारिस्थितिकी तंत्र के लिए आवश्यक हैं और परागण सहित पारिस्थितिकी क्रियाओं के रखरखाव को सुनिश्चित करके अधिकांश स्वदेशी एवं खेती के पौधों की प्रजनन की सफलता के लिए काफी हद तक जिम्मेदार हैं। कीट समूह परागणकर्ताओं के सबसे महत्वपूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं, और ये बड़ी संख्या में पुष्पीय प्रजातियों के पौधों के परागण की प्रक्रिया में सहायक हैं। पर्वतीय हिमालयी क्षेत्र (उत्तराखण्ड, जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश) जैव विविधता की अद्वितीय धरोहर के रूप में विश्व में अपना एक विशेष महत्व रखता है। पर्वतीय क्षेत्र में प्रचुर जैव विविधता सम्मिलित रूप से जंगल एवं कृषि पारिस्थितिकी तंत्र की प्रजातियों का प्रतिनिधित्व करती हैं और परागणकर्ता क्रमशः जंगल एवं कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को अपनी पारिस्थितिकी सेवाएँ प्रदान करके इनके आपसी विकास एवं साझा सामंजस्य की कड़ी हैं। जहां एक ओर जंगली पारिस्थितिकी तंत्र मधुमक्खी एवं अन्य कीट परागणकर्ताओं को भोजन एवं आवास के प्रचुर अवसर देता है वहीं दूसरी ओर मधुमक्खी एवं अन्य सहयोगी परागणकर्ता अपने परागण की सेवा से परपरागित पौधों को निषेचित कर कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में फल एवं बीज के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। परागणकर्ता प्रायः स्वपरागित तथा परपरागित दोनों प्रकार के पौधों के विकास एवं गुणवत्ता को प्रभावी रखने में विशेष योगदान देते हैं। नकदी फसलों की अधिकतम किस्मों में फल तथा बीज उत्पादन के लिए परपरागण की आवश्यकता होती है इस प्रकार की फसलों में मधुमक्खियों तथा अन्य प्राकृतिक तौर पर पाए जाने वाले परागण कीटों के कुशल प्रबन्धन द्वारा परागण क्रिया को और अधिक सफल किया जा सकता है। परागण क्रिया लैंगिक प्रजनन व अधिक फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण है। संपूर्ण परागण क्रिया न होने पर कई फसलों की उत्पादकता या तो कम हो जाती है और इसके साथ-साथ कई सारी प्रजातियों में बीज व फल निर्माण की प्रक्रिया बाधित होने लगती है।

परागण

नर पुष्प के जननांग (जायांग) से परागणकों को मादा पुष्प के जननांग (वर्तिकाग्र) तक पहुंचाने तथा दोनों नर एवं मादा पुष्प के संयोजन एवं निषेचन क्रिया को परागण कहते हैं। परागण की क्रिया से पुष्पीय पौधों में फल एवं बीज का विकास सुनिश्चित होता है एवं इस क्रिया में सहयोगी कारकों (अभिकर्ता) प्रायः जैविक एवं दो

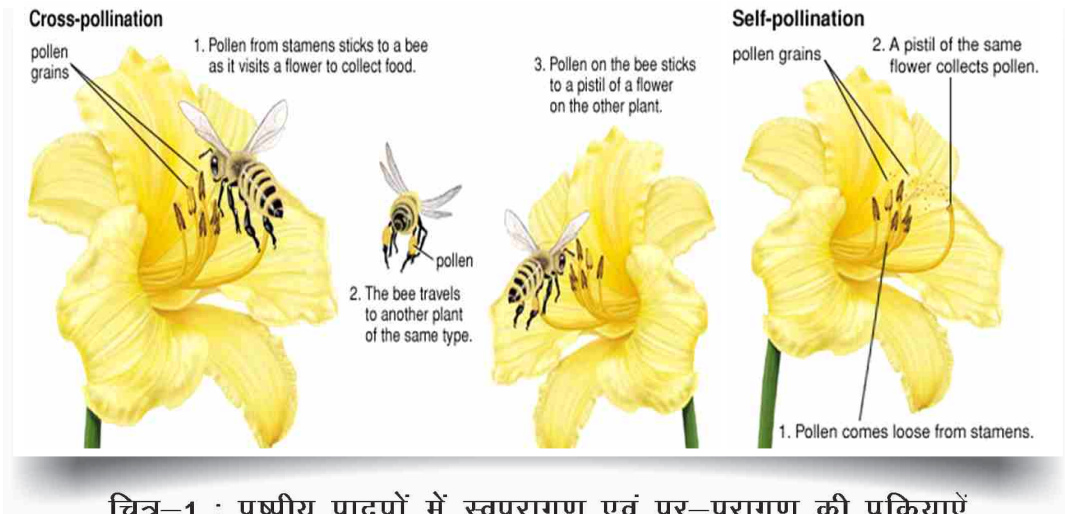
प्रकार के होते हैं जिन्हें परागणकर्ता कहते हैं। प्रकृति में मुख्यतया दो प्रकार से पुष्पीय पादपों में परागण की क्रिया में सम्पन्न होती है जो स्वःपरागण तथा परपरागण के नाम से जानी जाती है।

स्वः परागण

स्वःपरागण की प्रक्रिया में एक ही पुष्प में नर तथा मादा अंग विकसित होते हैं। स्वःपरागण की क्रिया प्रायः अजैविक कारकों हवा तथा पानी के द्वारा सम्पन्न होती है।

पर परागण

परपरागण की प्रक्रिया प्रायः उन पुष्पीय पादपों में सम्पन्न होती है जिनमें नर तथा मादा पुष्प अलग-अलग पौधों अथवा एक ही वृक्ष पर विकसित होते हैं। परपरागण की प्रक्रिया में नर पुष्प के जननांग (जायांग) से परागणों को मादा पुष्प के जननांग (वर्तिकाग्र) तक पहुंचने की प्रक्रिया को परागण कहते हैं तथा इस क्रिया में सम्मिलित कारकों/अभिकर्ताओं (जैविक एवं अजैविक) को परागणकर्ता कहते हैं। इस प्रक्रिया में पुष्पीय पौधों में फल तथा फल से बीज बनने की प्रक्रिया सुनिश्चित होती है। प्रायः पर परागण की क्रिया दो प्रकार के माध्यमों से सम्पन्न होती है।



चित्र-1 : पुष्पीय पादपों में स्वपरागण एवं पर-परागण की प्रक्रियाएँ

प्रथम अजैविक कारकों द्वारा जिनमें हवा तथा पानी मुख्य हैं द्वितीय प्रकार में जैविक परागण आता है इसमें परागण प्रायः मधुमक्खियों, तितलियों, सलभ, पक्षियों, चमगादड़, गिलहरी तथा अन्य प्रजाति के प्राणियों द्वारा सम्पन्न होता है।

पर-परागणकर्ता

प्रकृति में मूलतः दो प्रकार के परागणकर्ता (अजैविक तथा जैविक) होते हैं। अजैविक परागणकर्ताओं में हवा, पानी तथा गुरुत्वार्कषण मुख्य हैं। अधिकांश कृषि फसलों जो शुष्क परागणों का निर्माण करते हैं जैसे – धान, गेहूँ, मक्का, बाजरा, चेष्टनट, पीकानट, अखरोट, चिलगोजा आदि हवा से पूर्णतया परागित होते हैं। जैविक

परागणकर्ताओं में मुख्यतः कीट पक्षी चमगादड़ तथा अन्य स्तनधारी जीव आते हैं। जैविक परागण तब होता है जब कोई जीव—जन्तु पुष्पीय पादपों से अपना भोजन (पराग एवं मकरन्द) इकट्ठा करने जाता है।

पर-परागण की आवश्यकता —

विभिन्न फसलों में फल व बीज का विकास परागण द्वारा ही संभव होता है अधिकतर पौधों में अपने फूलों से प्राप्त होने वाले परागकणों द्वारा परागण नहीं होता है। बल्कि उन्हें अन्य पौधों के परागकणों की आवश्यकता होती है जिसके परिणामस्वरूप पर-परागण होता है। इस श्रेणी में वे सभी पौधे आते हैं जिनमें फूलों के नर व मादा भाग या तो अलग अलग पौधों पर होते हैं या फिर उसी पौधे के अलग अलग भागों में विकसित होते हैं। पर-परागण उन अन्य फसलों में भी आवश्यक होता है जिनमें नर व मादा भाग एक ही फूल पर होने के बावजूद भी प्राकृतिक तौर पर परागण उपलब्ध नहीं होते हैं अथवा परागण की क्रिया संभव नहीं हो सकती है। पर-परागण बहुत सी स्वयं बेमेल अथवा स्वयं अफलित कृषि बागवानी की फसलों में फल एवं बीज के विकास के लिए अत्यावश्यक होता है। इस श्रेणी में सेव, बादाम, चेरी, आड़ू, प्लम, बंदगोभी, फूलगोभी, मूली आदि आते हैं। इसके साथ साथ पर-परागण एक लैंगिक पुष्पीय फसलों जैसे खीरा, ककड़ी, कद्दू, लौकी, तरबूज, खरबूज आदि में भी फल विकास की क्रिया में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वैश्विक स्तर पर परागण व परागणकर्ताओं का योगदान

वैश्विक स्तर पर लगभग 75 फीसदी पुष्पीय पौधे निषेचन हेतु जीव परागणकर्ताओं पर निर्भर रहते हैं और लगभग 02 लाख से अधिक जीव प्रजातियाँ परागणकर्ताओं के रूप में कार्य करते हैं। दुनिया भर में भोजन के लिए लगभग 1000 प्रजातियों के पौधे जो कि फल, तिलहन, दलहन, मसाले, दवाई, रेशा, पेय तथा सब्जियों के रूप में उगाई जाती है को परागण हेतु जीव परागणकर्ताओं की आवश्यकता होती है। अनुमानतः वैश्विक स्तर पर 35 फीसदी फसलों को प्रजनन एवं विकास के लिए जीव परागणकर्ताओं के मध्यस्थता की आवश्यकता होती है। एक अनुमान के अनुसार प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में जैव परागणकर्ताओं की आवश्यकता वाले पुष्पीय पौधों का अनुपात समशीतोष्ण क्षेत्रों में 78 फीसदी और ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में 94 फीसदी है।

परागणकर्ताओं के योगदान से पर्वतीय कृषि विकास में आर्थिक लाभ

एक वैज्ञानिक अध्ययन से अनुमान लगाया गया है कि हिन्दुकुश हिमालयी क्षेत्र में कृषि उत्पादन से पैदा होने वाली प्रमुख फसलों के उत्पादन में कीट परागणकर्ताओं के सहयोग से वार्षिक फसलीय मूल्य 27 बिलियन अमेरिकी डॉलर का आर्थिक लाभ था, इसमें बांग्लादेश का चटगांव पहाड़ी इलाका 53.8 मिलीयन अमेरिकी डॉलर, भूटान 17.9 मिलीयन अमेरिकी डॉलर, चीनी हिमालयी क्षेत्र के लिए 676.8 मिलीयन अमेरिकी डॉलर, हिमाचल प्रदेश के लिए 365 मिलीयन अमेरिकी डॉलर, कश्मीर तथा उत्तर पश्चिमी भारतीय हिमालयी क्षेत्र के लिए 426.8 मिलीयन अमेरिकी डॉलर, उत्तराखण्ड तथा मध्य हिमालयी क्षेत्र के लिए 166.8 मिलीयन अमेरिकी डॉलर तथा पाकिस्तान के हिमालयी क्षेत्र में लिए 954.6 मिलीयन अमेरिकी डॉलर का है। इसी क्रम में अध्ययन में अनुमान है कि फल वाली फसलों के लिए 2.3 करोड़ डॉलर कीट परागण से वार्षिक आर्थिक मूल्य का अनुमान है। तिलहन फसलों के लिए 233.1 मिलीयन अमेरिकी डॉलर, दलहन के लिए 2.7 मिलीयन अमेरिकी डॉलर, मसालों के लिए 5 मिलीयन अमेरिकी डॉलर, अखरोट तथा अन्य शुष्क मेवा वृक्षीय फसलों के लिए 50.5 मिलीयन अमेरिकी डॉलर और सब्जी वाली फसलों के लिए 78.5 मिलीयन अमेरिकी डॉलर का वार्षिक आर्थिक मूल्य परागणकर्ताओं की सेवा से आता है।

पर्वतीय कृषि विकास में परागण व परागणकर्ताओं की निर्भरता

परागणकर्ताओं की आबादी और विविधता में गिरावट, नैषर्गिक जैवविविधता एवं कृषि उत्पादकता को प्रभावी रूप से कम कर रही है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम पहाड़ी क्षेत्र तथा उत्तराखण्ड के अधिकांश पहाड़ी क्षेत्र शीतोष्ण फसलों (नकदी तथा पारंपरिक) फल, सब्जियां, तिलहन, दलहन तथा अन्य बहुउपयोगी फसलों के उत्पादन के लिए संपूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। इन नकदी फलदार फसलों में सेव, खुमानी, प्लम, नाशपाती, आड़ू, बादाम, चेरी, स्ट्राबेरी, कीवी फल प्रमुख हैं तथा नकदी एवं बेमौसमी सब्जियों की श्रेणी में फूलगोभी, पत्तागोभी, सलाद पत्ता, ब्रोकली, कद्दू, खीरा, लौकी, स्ववैश तथा फ्रासबीन मुख्य हैं। परन्तु समय के साथ-साथ सभी उन्नत कृषि संबंधी उपायों (प्रमाणिक बीज, जैविक एवं रसायनिक खाद, सिंचाई) के प्रचुर आदान प्रदान के बावजूद भी शीतोष्ण प्रजाति के फसलों की उत्पादकता में निरन्तर कमी आ रही है। भारत तथा वैश्विक स्तर पर खाद्यान्नों के उत्पादकता के घटते स्तर के लिये जीव परागणकर्ताओं की आबादी एवं विविधता में कमी को वैश्विक स्तर पर पहली बार 1972 में ब्राजील के रियो डिजेनेरियो में पृथ्वी सम्मेलन में विश्व के वैज्ञानिकों ने आपसी परिचर्चा में सम्मिलित किया तथा स्पष्ट रूप से इस बात की सहमति जताई कि परागणकर्ताओं की कमी ही कहीं न कहीं खाद्यान्नों के उत्पादन में कमी का ही कारण है



1. स्वदेशी मधुमक्खी



2. एकल मक्खी



3. बम्बल मक्खी



4. स्वदेशी मधुमक्खी



5. एकल मक्खी



6. ड्रोन मक्खी



7. स्वदेशी मधुमक्खी



8. एकल मक्खी



9. तितली



10. एकल मक्खी



11. ड्रोन मक्खी



12. सिरपीड मक्खी



13 स्वदेशी मधुमक्खी



14 विदेशी मधुमक्खी



15 ड्रोन मक्खी

चित्र: 1 से 3 (सेव के परागणकर्ता), 4 से 6 (खुमानी के परागणकर्ता), 7 से 9 (पलम के परागणकर्ता),
10 से 12 (स्ट्रावेरी के परागणकर्ता), 13 से 15 (सरसों के परागणकर्ता)

कृषि में श्रम प्रयुक्त विज्ञान द्वारा कार्य सरलीकरण

कुशाग्रा जोशी, रेनु सनवाल, रेनु जेठी एवं डा० निर्मल चन्द्रा
विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

भारतवर्ष के कुछ राज्यों विशेष रूप से पर्वतीय राज्य जहाँ कृषि, पशुपालन, चारा एवं ईंधन एकत्र करने और घरेलू क्रियाकलापों में सक्रिय भागीदारी होने के कारण महिलाएं ही मुख्य रूप से ग्रामीण कार्यबल है। इन राज्यों में महिलाएं कृषि व पशुपालन में कुल कार्य का 90 प्रतिशत योगदान दे रही हैं। उदाहरणतः उत्तराखण्ड में कार्यबल भागीदारी की दर राष्ट्रीय दर से इन क्षेत्रों में महिलाओं की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण भागीदारी के कारण अधिक है। 2011 की गणना के अनुसार खेती में महिलाओं की भागीदारी 64 प्रतिशत एवं कृषि मजदूरी में 8.84 प्रतिशत है। पर्वतीय पारिस्थितिकी में प्रायः विभिन्न कारक विद्यमान हैं जो इन क्षेत्रों की महिलाओं के स्वास्थ्य, फलस्वरूप कार्य क्षमता को अवरोधित करते हैं। इनमें से एक प्रमुख चिन्तनीय विषय है 'कृषि कार्यों में कठिन श्रम एवं व्यवसायिक जोखिम'। कृषि कार्यों में समय व अधिक श्रम की मांग होने के साथ-साथ वातावरणीय परिस्थितियों के कारण भी महिला कृषकों के व्यावसायिक स्वास्थ्य पर विपरित प्रभाव पड़ता है। यह जोखिम एवं स्वास्थ्य विकार अधिकांशतः उचित कृषि यंत्रों के अभाव तथा कुछ मानवीय कारकों जैसे कार्य-सरलीकरण की विधियों, कार्य-विश्राम चक्र, कार्य के दौरान प्रयुक्त की जाने वाली मुद्रा इत्यादि के बारे में जानकारी न होना एवं लापरवाही बरतना इत्यादि के कारण कृषिरत महिलाओं में देखे जाते हैं। यह लेख कृषि में इन सभी कारणों के द्वारा महिला कृषकों को होने वाले सम्भाव्य जोखिमों एवं स्वास्थ्य सम्बंधी खतरों, उनके कारण एवं बचाव के तरीकों पर केन्द्रित है। कार्य-सरलीकरण के सिद्धान्तों तथा हस्तीय कार्य के सही दिशा-निर्देशों को अपनाकर कृषिरत महिलाएं कृषि सम्भाव्य स्वास्थ्य खतरों एवं उनसे उत्पन्न होने वाले विकारों से बचाव व निवारण कर अपनी श्रम साध्यता में वृद्धि कर सकती हैं।

कृषि में कठिन श्रम: परिचय

भारत में करीब 80 प्रतिशत कृषि कार्य मानव श्रम द्वारा किए जाते हैं। ये कार्य अत्यधिक थकान उत्पन्न करने वाले होते हैं, क्योंकि इनमें अधिक मानवीय श्रम की आवश्यकता होती है। कृषि की गतिविधियों में मानव की मांसपेशियों का 65 प्रतिशत योगदान रहता है। आवश्यक सुविधाओं का अभाव, स्थिर कार्य मुद्रा, मांसपेशीय बल एवं मानव शक्ति पर निर्भरता कृषि कार्य को और कठिन बना देते हैं। महिलाओं को पर्वतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। मैदानी क्षेत्रों के विपरीत पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं को ईंधन, चारा व पानी लाने के लिए ऊचे - नीचे रास्तों में कई किलोमीटर चलना पड़ता है। इसके अतिरिक्त महिलाएं कृषि कार्य जैसे - रोपाई, निराई-गुड़ाई, कटाई और फसल प्रसंस्करण जैसी अधिक श्रम व समय लेने वाली गतिविधियों में संलग्न रहती हैं। कृषि कार्यों में लम्बे समय तक व्यस्त रहने के कारण वे अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धित परेशानियों जैसे - अस्थि मज्जा विकार, पीठ व कमर दर्द, गठिया व अनेमिया (रक्त की कमी) जैसे रोगों से पीड़ित होते हैं।

प्रतिकूल मौसम, कार्य की कष्ट दायक थकाऊ प्रवृत्ति, पीड़ाकारी कार्यानुभव, पेशे से उत्पन्न विकार आदि इस पद की व्याख्या करते हैं। तीन गुण मुख्यतः कठिन श्रम को परिभाषित करते हैं: बहुत समय लागत, दोहराव/पुनरावृत्ति एवं दुःसाध्य/कठिन कार्य। कृषि कार्यों में प्रत्येक चरण कठिन है एवं इसमें कठिन शारीरिक श्रम प्रयुक्त होता है।

सारणी 1 : कृषि कार्यों में कठिन परिश्रम का स्तर एवं कारक

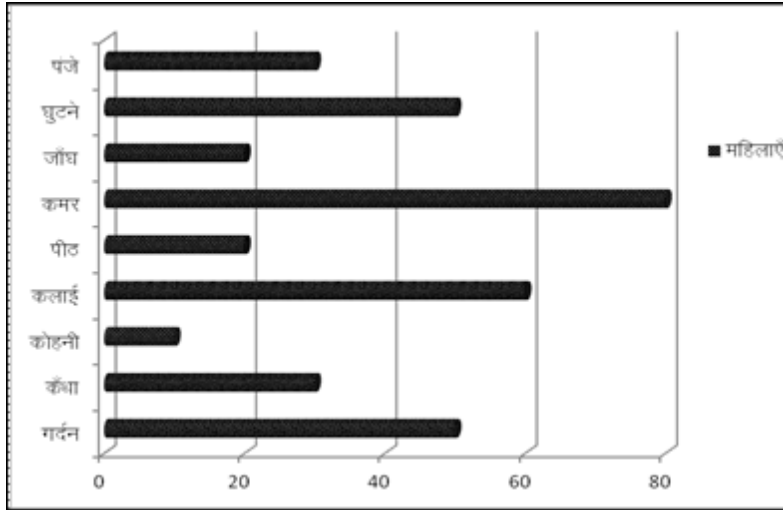
क्र. सं.	कृषि कार्य	कठिन परिश्रम का स्तर	कारण/संभावित परेशानियाँ
1.	धान रोपाई	अत्यधिक कठिन	? कार्य करते समय अधिक देर तक झुकने की अवस्था। ? लम्बे समय तक गहरे पोखर मिट्टी में खड़े रहना। ? गीली जमीन में भार उठाकर चलने में परेशानी
2.	निराई-गुड़ाई	मध्यम भारी	? लम्बे समय तक एक ही अवस्था में बैठे रहना। ? गलत अंग स्थिति से कार्य का निष्पादन। ? पुराने यंत्रों का प्रयोग।
3.	फसल कटाई	भारी से अत्यधिक भारी	? लम्बे समय तक झुककर कार्य करना। ? शारीरिक मुद्राओं का बार-बार दोहराव। ? शरीर के विभिन्न हिस्सों में दर्द का अनुभव व थकान। ? हाथ के छाल कटना व खरौंच लगना। ? हाथ की पकड़ कमजोर होना। ? अत्यधिक शारीरिक ऊर्जा की खपत।
4.	घास/चारा कटाई	भारी से अत्यधिक भारी	? लम्बे समय तक झुकना व पैर के अंगूठे के सहारे बैठना। ? अत्यधिक समय व शारीरिक ऊर्जा की खपत। ? अत्यधिक भार उठाना। ? कंधे, पीठ, गर्दन व हाथ में दर्द का अनुभव।
5.	सिर/कंधे पर बोझ उठाना	मध्यम भारी से भारी	? शरीर में दर्द का अनुभव व थकान। ? गलत अंग स्थिति में कार्य करना। ? अत्यधिक शारीरिक ऊर्जा की खपत।
6.	धान व कदन्न फसलों की मड़ाई/गहाई	अत्यधिक भारी	? लम्बे समय तक झुककर कार्य करना। ? अधिक श्रम व समय लेने वाली गतिविधि।

विभिन्न कृषि कार्य श्रमिकों द्वारा विभिन्न मुद्राओं एवं विभिन्न कार्य वातावरण में किए जाते हैं। फसल उत्पादन हेतु विभिन्न क्रियाओं के सम्पादन में प्रायः निम्नलिखित कार्य प्रणाली देखी जाती है:

- पुनरावृत्ति वाली क्रियाएँ कम से कम एक से दो घंटे तक की जाती हैं।
- कार्यकर्ता अधिक लम्बे समय तक किसी भी मुद्रा में कार्य करते हैं, जैसे बार-बार लट्टे को उठाना व फसल पर पटकना, सूप चलाना आदि।
- व्यक्तिगत सुरक्षा हेतु उपकरण जैसे मास्क, दस्ताने आदि का प्रयोग सामान्यतः नहीं किया जाता है।

चित्र-1 में प्रदर्शित आंकड़े महिलाओं में दीर्घकालीन शारीरिक असहजता के चिकित्सा प्रोफाइल को दर्शाते हैं। पिछले एक वर्ष में 53 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाएँ बुखार से पीड़ित थीं जो कि अस्थायी प्रवृत्ति का था। इसके अतिरिक्त शारीरिक दर्द, आँखों में जलन व सिर दर्द भी महिलाओं की कार्यक्षमता को प्रभावित करता है। कठिन परिश्रम गतिविधियों द्वारा प्रेरित हाथ में दर्द व झनझनाहट आदि परेशानियों का सामना महिलाओं को

करना पड़ा। कृषक महिलाओं द्वारा सर्वाधिक असहजता/मांसपेशीय तनाव कमर, कलाई, घुटने, गर्दन, आदि में बताए गए जो कि दीर्घकालिक थे।



चित्र-1 कृषिरत महिलाओं में दीर्घकालिक शारीरिक दर्द

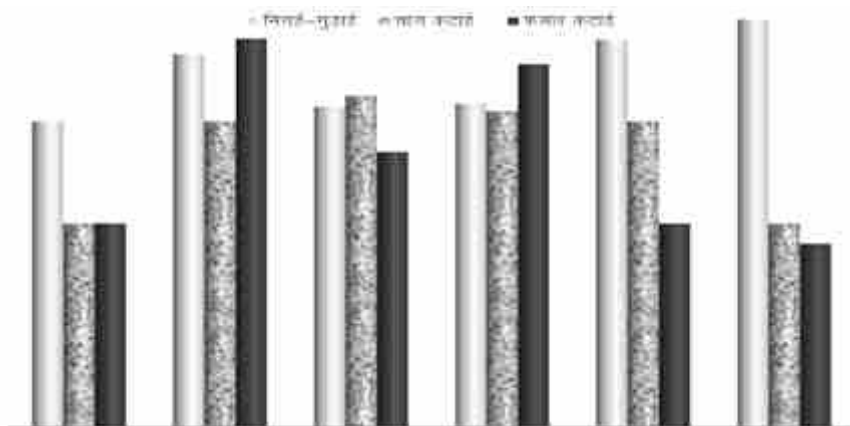
कृषि कार्यों के दौरान पेशे से उत्पन्न मांसपेशीय विकार का विश्लेषण

विभिन्न कृषि कार्यों के दौरान पेशे से उत्पन्न मांसपेशीय विकार का आंकलन करने से ज्ञात होता है कि महिलाओं को निराई-गुड़ाई, चारा कटाई व फसल कटाई कार्यों में शरीर के लगभग सभी अंगों में मध्यम से अत्यधिक दर्द का अनुभव होता है, जिसका मुख्य कारण गलत अंग स्थिति में कार्य करना व लगातार एक जैसे भारी कार्य करना है।

कठिन श्रम से उत्पन्न मांसपेशीय विकारों में सबसे सामान्य लक्षण है शरीर में दर्द महसूस करना। अक्सर जोड़ों में अकड़न, मांसपेशियों में संकुचन तथा प्रभावित हिस्से में लालिमा या सूजन भी देखे गये हैं। कुछ कृषकों को शरीर में झंझनाहट, सुन्नपन्न का भी अहसास होता है। कठिन श्रम से उत्पन्न विकार शुरू में तो हल्के प्रतीत होते हैं लेकिन समय के साथ ये गम्भीर से गम्भीर रूप ले लेते हैं।

राष्ट्रीय व्यवसायिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य संस्थान, अहमदाबाद द्वारा कुछ अवस्थाएँ वर्णित की गयी हैं जो निम्नलिखित हैं:

- **प्रारम्भिक अवस्था:** कार्य करते समय प्रभावित अंग में दर्द एवं थकान होती है जो कि कार्य के समाप्त होते ही विलुप्त हो जाती है, इसमें कार्य क्षमता पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है।
- **मध्यवर्ती अवस्था:** इसमें प्रभावित अंग में दर्द एवं थकान कार्य समाप्ति के बाद भी महसूस होती है। ऐसी अवस्था में दोहराव वाली क्रियाएँ करने की क्षमता कम हो जाती है।
- **विलम्बित/दीर्घ अवस्था:** दर्द एवं थकान आराम करते वक्त भी मौजूद रहते हैं। ऐसी अवस्था में हल्के कार्य करने में व्यवधान एवं सोने में भी अक्षमता रहती है।



चित्र-2. कृषि कार्य करते समय महिलाओं के शारीरिक दर्द का आंकलन

कठिन श्रम से उत्पन्न मांसपेशीय विकारों के लिये जोखिम कारण

प्रायः इन विकारों के अनेक कारण हैं: शारीरिक, अर्गोनोमिक (श्रम प्रयुक्ति सम्बंधित) तथा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक। इन विकारों के लिये उत्तरदायी कारक मुख्य रूप से दोहराव वाले कार्य, दर्दनाक एवं थकाऊ मुद्राएँ, अधिक भारी भोजन उठाना तथा अन्य कारक, जैसे बहुत समय तक खड़े रहना या चलना इत्यादि हैं। ये सभी क्रियाएँ जागरूकता के अभाव में विभिन्न विकारों को जन्म दे सकती हैं। इन क्रियाओं के शारीरिक प्रभाव प्रायः निम्नलिखित देखे गये हैं:

विकार	लक्षण	संभावित कारण
टेन्डनाइटिस/ टेनोसाइनोवाइटिस	दर्द का अनुभव व कंधा जाम होना।	झटका लगने वाले कार्य, अत्यधिक भार उठाना, कलाई का निरंतर प्रयोग।
ट्रिगर-फिंगर	अंगुलियों को हिलाने में परेशानी, अंगुलियाँ जाम होना।	अधिक समय तक पारम्परिक हस्तचलित यंत्रों / उपकरणों का प्रयोग।
कार्पल टनल सिन्ड्रोम	दर्द, सूजन।	कार्य करते समय बार-बार कलाई व हाथ का प्रयोग, भार उठाना।
पीठ व कमर विकार	पैर के ऊपरी हिस्से में सुन्नता एवं पीठ में दर्द।	वाइब्रेशन उत्पन्न करने वाले उपकरणों का अत्यधिक प्रयोग व गलत मुद्रा में कार्य करना।
डी-क्वरेन विकार	अंगूठे के निचले हिस्से में दर्द होना।	पारम्परिक हस्तचलित उपकरण/यंत्र का अत्यधिक प्रयोग।

(स्रोत: राष्ट्रीय व्यवसायिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य संस्थान, अहमदाबाद पत्रिका)

असह्य एवं कष्टकारी मुद्रा से मांसपेशीय विकार

विभिन्न मुद्राएँ जो कृषि कार्यों में प्रयुक्त होती हैं उनमें आगे की ओर झुकना, मुड़ना, बैठना, घुटनों के बल बैठना, हाथ, पैर, कमर को घुमाना आदि प्रमुख हैं। यह मुद्राएँ बार-बार दोहराई जाती हैं। कुछ प्रक्रियाओं में

मांसपेशियों में संकुचन एवं कुछ में गतिशीलता बनी रहती है। जब शरीर असमान्य मुद्रा में निरंतर काम करता है तो शरीर का गुरुत्वाकर्षण केंद्र भी बदल जाता है। फलस्वरूप शरीर अस्थिर हो जाता है और यह कमर के भाग में तनाव का एक कारण हो सकता है। इस तरह की कार्य मुद्राओं से शरीर में दर्द, व्याधि एवं कार्य क्षमता में कमी आती है। कृषि कार्यों में प्रयुक्त जोखिम मुद्राएँ हैं :

- हाथों को प्रतिदिन दो घंटे से अधिक समय तक सिर से ऊपर रखकर कार्य करना।
- हाथों को बार-बार सिर से ऊपर या कोहनी को कंधे से ऊपर रखकर कार्य करना (प्रतिदिन दो घंटे से अधिक समय तक)।
- कमर को 30 डिग्री से अधिक मोड़कर आगे की ओर झुककर कार्य करना (प्रतिदिन दो घंटे से अधिक समय तक)।
- गर्दन को 30 डिग्री से अधिक झुकाकर कार्य करना।
- कलाई को 30 डिग्री से अधिक मोड़कर दोहराव वाले कार्य करना।
- घुटने के बल बैठना (प्रतिदिन दो घंटे से अधिक समय तक)।
- घुटने मोड़कर बैठना (प्रतिदिन दो घंटे से अधिक समय तक)।

व्यावसायिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए राष्ट्रीय संस्थान (1997) की रिपोर्ट के अनुसार झुकने, बैठने और गैर तटस्थ आसन अप्राकृतिक मुद्राएँ हैं जो पीठ के निचल हिस्से में विकार के लिए ज़िम्मेदार हैं।

कठिन श्रम एवं मांसपेशीय विकारों का प्रबंधन

डॉक्टरों के मुताबिक 90 प्रतिशत लोगों को अपने जीवनकाल में किसी न किसी समय रीढ़ की हड्डी में दर्द की शिकायत से जूझना पड़ता है। ऐसे में काम करने के गलत तरीकों और गलत मुद्राओं में बैठने और काम करने से समस्या और भी अधिक बढ़ जाती है। कठिन श्रम का न्यूनीकरण थोड़ी जागरूकता रखकर किया जा सकता है। कार्य करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखना आवश्यक है:

- कार्य करते समय कार्य मुद्रा का ध्यान रखें। अच्छी मुद्रा रीढ़ के प्राकृतिक वक्र को बनाए रखती है।
- अधिक झुकने तथा मुड़ने वाले आसन से बचें। ये रीढ़ की डिस्क पर दबाव डाल सकते हैं।
- जितना संभव हो हाथ व कलाई की मुद्रा तटस्थ रखें।
- झुककर काम करने की अपेक्षा बैठकर या खड़े रहकर कार्य करना चाहिए।
- थोड़ी-थोड़ी देर में शारीरिक मुद्रा बदलते रहना चाहिए। शरीर के अंगों को उचित मुद्रा व स्थिति में रखने पर कार्यकर्ता को थकान कम होगी, साथ ही शारीरिक शक्ति भी कम व्यय होगी।
- कार्य करते समय मजबूत व बड़ी मांसपेशियों का प्रयोग करना चाहिए जैसे – भार उठाते समय पैरों व हाथों की मांसपेशियों का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि वे मजबूत होती हैं। भार उठाने के लिए एक हाथ की बजाय दोनों हाथों का प्रयोग करें।
- भार उठाते समय उसे शरीर के समीप रखना चाहिए। इससे शक्ति कम व्यय होगी व थकान भी कम होगी। व्यक्ति को अपने शारीरिक वजन व क्षमता के अनुसार ही भार उठाना चाहिए अन्यथा कई मांसपेशीय व हड्डियों से सम्बन्धित समस्याएँ हो सकती हैं। शोध द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि व्यक्ति को अपने वजन का 30 प्रतिशत भार उठाना ही सुरक्षित है।

- भारी कार्यों के दौरान व्यक्ति को बीच-बीच में थोड़ा विश्राम करना चाहिए। इससे मांसपेशियों को भी आराम मिलता है व उनमें उत्पन्न दबाव व तनाव भी कम हो जाता है। यदि किसी कार्य को करने में शारीरिक क्रियाओं को बार-बार दोहराया जा रहा है, जैसे – निराई-गुड़ाई व चारा कटाई में तो कार्य के बीच-बीच में अल्प विराम अवश्य लें जिससे मांसपेशियों को आराम मिलता है व थकान का कम अनुभव होता है।
- झटके या उछाल वाले आसन न करें।
- धूल कणों या घास फूस से बचने के लिए चश्मा तथा मास्क या दुपट्टे का प्रयोग एक विकल्प के रूप में करना चाहिए।
- इसके अलावा व्यक्ति को पौष्टिक आहार भी उचित मात्रा में लेना चाहिए। अपने भोजन में अनाज, दाल, सब्जियाँ, फल, दूध, दही इत्यादि नियमित रूप से सम्मिलित करने चाहिए। इसमें पाये जाने वाले तत्व शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाकर व्यक्ति को स्वस्थ रखते हैं व उसे कई रोगों से बचा सकते हैं।

निष्कर्ष

कृषि में कार्य-सरलीकरण के परिचय से कठिन परिश्रम को कम करने और कार्यकुशलता में सुधार होगा। कठिन श्रम न्यूनीकरण एक संभावित निर्गम है जो कृषकों को उन्नत उत्पादक क्षमता व स्वास्थ्य के साथ कार्य करने के लिए सक्षम करता है। कठिन श्रम को तब तक सहा जा सकता है जब तक इसका परिणाम मुख्य विकारों/खतरों में परिवर्तित ना हो जाए। अतः इस प्रकार की अवांछित स्थितियों से बचने के लिए कठिन श्रम न्यूनीकरण उपायों जैसे उन्नत जैडर-अनुकूल कृषि यंत्रों का प्रयोग, कार्य-सरलीकरण के सिद्धान्तों तथा हस्तीय कार्य के सही दिशा-निर्देशों को अपनाने की शुरुआत की जानी चाहिए। कृषिरत महिलाएं कृषि सम्भाव्य स्वास्थ्य खतरों एवं उनसे उत्पन्न होने वाले विकारों से बचाव व निवारण कर अपनी श्रम साध्यता में वृद्धि कर सकती हैं। ध्यान रखें – कठिन श्रम का न्यूनीकरण थोड़ी जागरुकता एवं उन्नत तकनीक के इस्तेमाल से सम्भव है।

मानव-वन्यजीव संघर्ष : एक आंकलन

डा० प्रकाश सिंह एवं डा० आर० सी० सुन्दरियाल
गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

“मानव तथा वन्य जीवों के बीच होने वाले किसी भी अंतराकर्षण (Interaction) में यदि मानव, वन्यजीव, समाज, आर्थिक क्षेत्र, सांस्कृतिक जीवन, वन्यजीव संरक्षण या पर्यावरण पर कोई नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, तब उसे मानव-वन्यजीव संघर्ष कहा जाता है।”

मानव जाति व वन्यजीव के बीच सम्बन्ध आदिकाल से रहा है। अधिकांश सभ्यताओं का विकास धने जंगलो से घिरे नदी-घाटी वाले क्षेत्रों में ही हुआ, इन क्षेत्रों में रहने वाला मानव भोजन व अन्य दैनिक जरूरतों के लिये वन व वन्यजीवों पर ही निर्भर रहा है। यद्यपि हडप्पा कालीन संस्कृति से जुड़ी एक प्राचीन मुहर (जो एक सिंह को पेड़ के नीचे व एक मानव को पेड़ पर बैठा हुआ दर्शाती है) आदिकाल में भी मानव वन्यजीव संघर्ष को दर्शित करती है, वन्यजीवों के लिये उपलब्ध वास स्थान एवम् प्राकृतिक भोजन की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता के कारण मानव-वन्यजीव संघर्ष प्राचीन काल में लगभग नगण्य था। परन्तु समय के साथ मानव जनसंख्या में वृद्धि के फलीभूत प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र दोहन हुआ है, जिस कारण वन्यजीवों के प्राकृतिक अधिवासों यथा वन क्षेत्रों का निरन्तर ह्रास (degradation) व विनाश (distruction) हुआ है, परिणामस्वरूप वनों में वास करने वाले शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार के वन्यजीवों के सम्मुख वासस्थल व भोजन की समस्या उत्पन्न हुई हैं। मानव द्वारा कुछ विशेष वन्य जीवों के अवैध आखेट के कारण वन्यजीव खाद्य श्रृंखला निरन्तर प्रभावित एवं खंडित हुई हैं। प्राकृतिक अधिवासों के क्षरण व भोजन की अनुपलब्धता के कारण वन्यजीव का अपने प्राकृतिक अधिवासों से बाहर निकलकर मानव स्थल की ओर आवागमन अभूतपूर्व रूप से बढ़ा है जिसके फलस्वरूप मानव-वन्यजीव संघर्ष में निरन्तर वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, विकासोन्मुख परियोजनायें (डैम व सड़क निर्माण इत्यादि) तथा जलवायु परिवर्तन भी मानव-वन्यजीव संघर्ष की बढ़ोत्तरी का एक मुख्य कारण है। डैम निर्माण के कारण डूब क्षेत्र के निचले इलाकों में जल की उपलब्धता (विशेषतः ग्रीष्म ऋतु में) कम हो जाती है। साथ ही जलवायु परिवर्तन व कम वर्षा के कारण प्राकृतिक जल स्रोतों का ह्रास हुआ है। प्राकृतिक रूप से उपलब्ध जल की कमी के कारण वन्यजीव जल की खोज में मानव वासस्थल की ओर आवागमन करते हैं जिससे मानव वन्यजीव संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। वन्य जीवों के प्राकृतिक अधिवास क्षेत्र में सड़क निर्माण के कारण वन्यजीव के प्राकृतिक आवागमन मार्ग अवरुद्ध हुए हैं, जिस कारण वन्यजीवों के व्यवहार में बदलाव आया है।

वर्तमान में मानव-वन्यजीव संघर्ष ने भारतवर्ष ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में एक समस्या का रूप ले लिया है जो मानव क्षति, वन्यजीव क्षति तथा आर्थिक क्षति का एक मुख्य कारण बन रहा है। हाल ही में आस्ट्रेलिया में कृषि को उसके राष्ट्रीय पशु कंगारु के आतंक से बचाने के लिये कंगारु को मारने की अनुमति दी गई। भारत के बिहार राज्य में कृषि को नीलगाय के आतंक से बचाने के लिये नीलगाय को मारने की अनुमति देना व्यापक चर्चा का कारण बना है। एक अध्ययन के अनुसार भारत गणराज्य के 6 राज्यों में वर्ष 2000-2007 के बीच गुलदार

द्वारा 995 मानव हानि की तथा 722 गुलदारों की अप्राकृतिक रूप से मृत्यु होने की पुष्टि हुई है। इसके अतिरिक्त देश तथा विदेश के विभिन्न भागों से ग्रामीणों द्वारा वन्य जीव को जहर देकर या अन्य प्रकार से मार देने की घटनायें भी समय-समय पर सामने आती रहती हैं। उपरोक्त सभी घटनायें मानव-वन्य जीव संघर्ष की बड़ी हुई तीव्रता की पुष्टि करती हैं।

मानव-वन्यजीव संघर्ष की घटनायें यद्यपि सर्वत्र घटित हो रही हैं तथापि मुख्यतः संरक्षित क्षेत्रों के आस-पास स्थित ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक देखने को मिल रही हैं। वन तथा वन्यजीवों के संरक्षण के लिये राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संरक्षित क्षेत्रों का व्यापक नेटवर्क तैयार किया गया है। भारतवर्ष में कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 4.99 प्रतिशत भू-भाग संरक्षित क्षेत्र के अन्तर्गत रखा गया है। वन संरक्षण प्रयासों तथा कठोर वन्यजीव कानूनों के फलस्वरूप देश के विभिन्न संरक्षित क्षेत्रों में कुछ महत्वपूर्ण वन्य जीव प्रजातियों की संख्या में वृद्धि हुई है। उदाहरणार्थ, भारतवर्ष के विभिन्न संरक्षित क्षेत्रों में स्थित गुलदारों की संख्या वर्ष 1993 से 2001 के बीच 6830 से बढ़कर 9850 आंकी गई है। संरक्षण प्रयासों तथा कठोर वन्यजीव कानून के फलस्वरूप वन्यजीव की बड़ी हुई संख्या के कारण उसका अपने अधिवास के सहः जीवों के साथ भोजन तथा जल की पूर्ति हेतु संघर्ष बढ़ा है। वहीं दूसरी ओर मानव जनसंख्या वृद्धि के कारण संरक्षित क्षेत्रों की बाहरी सीमाओं पर मानव गतिविधियाँ बढ़ी हैं तथा इन संरक्षित क्षेत्रों में भोजन व जल की उपलब्धता में विभिन्न कारणों से निरन्तर कमी आयी है। सीमित वन क्षेत्र, प्राकृतिक अधिवासों के क्षरण व निम्नीकरण, प्राकृतिक अधिवासों में खंडित खाद्य श्रृंखला तथा भोजन व पानी की कमी के कारण वन्यजीव प्रायः संरक्षित क्षेत्रों से बाहर निकलकर मानव वास स्थल की ओर आवागमन कर रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप संरक्षित क्षेत्रों के आस-पास स्थित क्षेत्रों में मानव-वन्यजीव संघर्ष की घटनायें अभूतपूर्व रूप से बढ़ रही हैं।

उत्तराखण्ड में मानव-वन्यजीव संघर्ष

उत्तराखण्ड राज्य को भारतवर्ष ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में उसकी प्राकृतिक सुन्दरता, धार्मिक स्थलों तथा जीवनदायी नदियों के उदगम स्थल के रूप में जाना जाता रहा है। राज्य का गठन 9 नवम्बर 2000 को भारत गणराज्य के 27वें राज्य के रूप में हुआ। उत्तराखण्ड राज्य का कुल क्षेत्रफल 53,483 वर्ग किमी० है जिसका 90 प्रतिशत भू-भाग पहाड़ी क्षेत्र एवं केवल 10 प्रतिशत भू-भाग मैदानी क्षेत्र है। राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 64 व 45 प्रतिशत भू-भाग क्रमशः वन भूमि तथा वनाच्छादित भूमि के रूप में दर्ज किया गया है। राज्य का 13.79 प्रतिशत भू-भाग संरक्षित क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत 6 राष्ट्रीय उद्यान, 6 वन्य जीव विहार व 2 आरक्षित क्षेत्र हैं (तालिका 1)। राज्य में विद्यमान कुछ संरक्षित क्षेत्रों जैसे कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान, फूलों की घाटी, नन्दा देवी राष्ट्रीय उद्यान इत्यादि अपने सफल संरक्षण प्रयासों के लिये भारतवर्ष ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में ख्याति प्राप्त है।

उत्तराखण्ड राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों की आजीविका पारम्परिक रूप से कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है, यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में राज्य में कृषि क्षेत्र में गिरावट दर्ज की गई है। ग्रामीण समुदाय ईंधन, चारे व इमारती लकड़ी की आपूर्ति के लिये मुख्यतः आस-पास स्थित वनों पर निर्भर रहते हैं। इसके अतिरिक्त पारम्परिक रूप से वनौषधियों, खाद्य फल-फूल, इत्यादि का दोहन भी वनों से किया जाता रहा है। कई अध्ययन राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे समुदायों की आजीविका पर वनों के महत्वपूर्ण योगदान को दर्शाते हैं। चूंकि क्षेत्र में ग्रामीण समुदायों की आजीविका का वनों से गहरा सम्बन्ध है, राज्य के अधिकांश गावों की बसावट वनों के

तालिका 1 उत्तराखण्ड राज्य में स्थित संरक्षित क्षेत्रों का विवरण

क्रम सं.	संरक्षित क्षेत्र का नाम	स्थापना वर्ष	क्षेत्रफल (वर्ग कि०मी०)	जनपद
1	कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान	1936	520.82	नैनीताल, पौड़ी गढ़वाल
2	गंगोत्री राष्ट्रीय उद्यान	1989	2390.02	उत्तरकाशी
3	गोविन्द राष्ट्रीय उद्यान	1990	472.08	उत्तरकाशी
4	नन्दादेवी राष्ट्रीय उद्यान	1982	624.60	चमोली
5	राजाजी राष्ट्रीय उद्यान	1983	820.42	देहरादून, पौड़ी गढ़वाल, हरिद्वार
6	फूलो की घाटी राष्ट्रीय उद्यान	1982	87.50	चमोली
7	अस्कोट वन्यजीव विहार	1986	599.93	पिथौरागढ़
8	विनसर वन्यजीव विहार	1988	45.59	अल्मोड़ा
9	गोविन्द वन्यजीव विहार	1955	485.89	उत्तरकाशी
10	केदारनाथ वन्यजीव विहार	1972	975.20	चमोली, रुद्रप्रयाग
11	मसूरी वन्यजीव विहार	1993	10.82	देहरादून
12	सेनानदी वन्यजीव विहार	1987	301.18	पौड़ी गढ़वाल
13	आसन आर्द्रभूमि आरक्षित क्षेत्र	2005	4.44	देहरादून
14	झिलमिल झील आरक्षित क्षेत्र	2005	37.84	हरिद्वार

आस-पास ही है। वनों के निकट स्थित होने के कारण राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में मानव-वन्यजीव संघर्ष की घटनाएँ होती आयी हैं, जिसमें विगत एक-दो दशकों में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई है। ऐसे संघर्षों की तीव्रता संरक्षित क्षेत्रों के आस पास स्थित ग्रामों में अधिक देखी गई है। गुलदार, जंगली सुअर व बन्दरों का गावों में घुसना एक सामान्य बात हो गई है जो मानव-वन्यजीव संघर्ष का एक व्यापक कारण बनता जा रहा है। राज्य गठन से लेकर अब तक के परिदृश्य पर नजर दौड़ाये तो इस अवधि में जंगली जानवरों (मुख्यतः गुलदार) के हमलों में 615 लोगों की जान गई। इनमें भी चिन्ताजनक ये है कि इनमें 447 बच्चे थे। वही 3,102 लोग घायल हुये हैं। इनमें से अधिकतर घटनाएँ जंगलो के बाहर ग्रामीण क्षेत्रों की सीमाओं के भीतर हुई हैं। राज्य में वर्ष 2001 से 2011 के बीच गुलदार द्वारा कुल 6,739 पशु क्षति की घटनायें भी दर्ज हुई हैं (तालिका 2)। वहीं दूसरी ओर पर्वतीय क्षेत्रों में जंगली सुअर तथा मैदानी क्षेत्रों में नीलगाय तथा हाथियों के आतंक से प्रतिवर्ष कई हेक्टेयर कृषि उपज को नुकसान पहुंच रहा है। कार्बेट टाइगर रिजर्व से लगे व रामनगर वन प्रभाग से सटे ग्रामों में किये गये एक शोध से यह पता चला है कि जंगली जानवरों (मुख्यतः हाथी, चितल, जंगली सुअर व नीलगाय) द्वारा 21 प्रतिशत फसल को परिपक्व होने से पूर्व नष्ट कर दिया जा रहा है। यद्यपि पर्वतीय क्षेत्रों में इस प्रकार के आकड़ों का अभी अभाव है, परन्तु कई समाचार पत्रों व सामाजिक संगठनों द्वारा यह बात सामने आती है कि पर्वतीय क्षेत्रों में जंगली सुअर व बन्दरों के आतंक से ग्रामीणों ने खेतों में बुवाई करना ही छोड़ दिया है।

मानव-वन्य जीव संघर्ष ने मुख्यतः राज्य के पहाडी क्षेत्रों में एक गम्भीर समस्या का रूप ले लिया है। पहले से ही पलायन का दंश झेल रहे राज्य के पहाडी क्षेत्र में मानव-वन्य जीव संघर्ष की बढ़ती हुई घटनाओं ने स्थिति

को और अधिक चुनौतिपूर्ण बना दिया है। गुलदार द्वारा मानव क्षति व गम्भीर रूप से चोट पहुँचाए जाने की घटनायें आये दिन सामने आती रहती हैं। यद्यपि गुलदार में मानव अधिवास के नजदीक शांतिपूर्ण ढंग से रह सकने की अभूतपूर्व क्षमता देखी गई है, प्राकृतिक अधिवासों के व्यापक क्षरण तथा वनों में शफिगणों (ungulates) जिन्हें गुलदार प्राकृतिक रूप से अपना भोजन बनाते हैं, की संख्या में निरन्तर कमी होने के कारण गुलदार की उपरोक्त क्षमता का ह्रास हुआ है। परिणामस्वरूप, गुलदार भोजन व जल की आपूर्ति हेतु मानव वास स्थल में प्रवेश कर रहे हैं और मानव-वन्यजीव संघर्ष का कारण बन रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में पालतू पशुओं (बकरी, गाय, बैल, घोडा, इत्यादि) की उपलब्धता भी गुलदार को भोजन के लिये ग्रामीण क्षेत्र की ओर आकर्षित करती है। साथ ही प्राकृतिक आवास में भोजन व जल की कमी के कारण गुलदार के व्यवहार में परिवर्तन का अनुभव भी किया गया है। एक समाचार के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में जंगलों में भोजन एवं पानी की कमी के कारण गुलदार थकान व कमजोरी महसूस करते हैं परिणामस्वरूप उनके व्यवहार में परिवर्तन आ रहा है और प्यास बुझाने के लिये ये आबादी के आस पास बने रहते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं को आसानी से निशाना बनाते हैं।

पिछले कुछ दशकों में जंगली सुअरों की संख्या में अप्रत्याक्षित रूप से वृद्धि हुई है। लोमड़ी तथा सियार जो प्राकृतिक रूप से सुअर के बच्चों का भक्षण करते हैं, की संख्या में निरन्तर कमी आना सुअरों की संख्या वृद्धि का मुख्य कारण बताया गया है। जंगली सुअर कृषि को अभूतपूर्व क्षति पहुँचा रहे हैं। यह देखा गया है कि सुअरों का झुंड प्रायः रात्रि में कृषि क्षेत्र में प्रवेश कर फसल को बरबाद कर देता है। इसके अतिरिक्त बन्दरों द्वारा अपने को मानव वासस्थल के नजदीक रहने के लिये ढाल लिया है। शहरों में जहां बन्दरों के कारण स्कूल जाने वाले बच्चों में दहशत का माहौल है वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में खेतों में फसलों को बन्दरों के आतंक से बचाना मुश्किल हो रहा है। वन्यजीव द्वारा मानव तथा कृषि को पहुँचायी जा रही क्षति के कारण मनुष्य में वन्य जीवों के प्रति सहनशीलता खत्म हो रही है एवं जंगली जानवरों तथा संरक्षित क्षेत्रों के प्रति नकारात्मक भाव भी उत्पन्न हो रहा है। राज्य के कई ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीणों द्वारा जंगली जानवरों मुख्यतः गुलदार को लाठी-डण्डों से पीटकर या अन्य तरह से मार देने की घटनाएँ समय-समय पर सामने आ रही है।

मानव-वन्यजीव संघर्ष के उपशमन हेतु राज्य सरकार द्वारा मुख्य रूप से जीव पुर्नस्थापन व क्षतिपूर्ति हेतु अनुग्रह सहायता राशि के कार्य/उपाय पारंपरिक रूप से किये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त सुअरों व बन्दरों की बढ़ती हुई संख्या को नियंत्रित करने के लिये इन वन्य जीवों को मारने की अनुमति भी राज्य सरकार द्वारा प्रदान की गई है। बन्दरों को पकड़कर बाड़ों में रखने की योजना भी सरकार द्वारा बनायी गई है। गुलदार को मानव स्थल से पकड़कर उसके प्राकृतिक अधिवास में पुर्नस्थापित करना, गुलदार द्वारा जनित मानव-वन्यजीव संघर्ष के उपशमन हेतु सरकार द्वारा किया जा रहा एक मुख्य कार्य है। गुलदारों पर किये एक शोध से यह ज्ञात हुआ है कि गुलदार को मानव वास स्थल से पकड़कर पुर्नस्थापित करने में गुलदार उस प्राकृतिक अधिवास की खोज करता है जिससे पूर्व में निकलकर वह मानव वासस्थल की ओर आया होता है। अपने पूर्व प्राकृतिक वासस्थल की खोज में गुलदार कई सौ किमी० की यात्रा विभिन्न मानव वासस्थलों से होता हुआ तय करता है जिससे कि मानव वन्यजीव संघर्ष का पुर्नस्थापन के बाद भी व्यापक खतरा बना रहता है। इस कारण पुर्नस्थापन किये गये गुलदार की गति व भ्रमण की निगरानी किया जाना आवश्यक है। पुर्नस्थापित किये गये गुलदार की स्थिति का माइक्रोचिपिंग तथा सुदूर संवेदी यन्त्रों द्वारा निरीक्षण किया जा सकता है। यद्यपि क्षतिपूर्ति हेतु दिये जाने वाली अनुग्रह सहायता राशि को मानव वन्यजीव संघर्ष के समाधान के रूप में नहीं देखा जाता, यह राशि ग्रामीणों में वन्यजीवों के प्रति सहनशीलता को बनाये रखने में मदद करती है। उत्तराखण्ड राज्य में वन्यजीवों द्वारा किये

जाने वाली विभिन्न प्रकार की क्षति की पूर्ति के रूप में सरकारों द्वारा दी जाने वाली अनुग्रह धनराशि का विवरण तालिका 3 में दर्शित है।

तालिका 3 उत्तराखण्ड राज्य में क्षति पूर्ति हेतु दिये जानी वाली अनुग्रह धनराशि का विवरण

मानव क्षति	पशु क्षति	बछड़ा – पडवा की क्षति
? सधारण घायल – 30 हजार रुपये	? गाय – 30 हजार रुपये	? दो वर्ष से अधिक व तीन वर्ष से कम – 4 हजार रुपये एक वर्ष से दो वर्ष की आयु – 2 हजार रुपये
? गंभीर रूप से घायल – 1 लाख रुपये	? घोड़ा, खच्चर – 80 हजार रुपये	? एक वर्ष से कम आयु – 1 हजार रुपये
? आंशिक रूप से अपंग – 2 लाख रुपये	? बैल (तीन साल से अधिक आयु) – 30 हजार रुपये	? भेड़, बकरी – 6 हजार रुपये।
? पूर्ण रूप से अपंग – 4 लाख रुपये	? भैंस (तीन साल से अधिक आयु) – 30 हजार रुपये	
? व्यस्क और अव्यस्क की मृत्यु पर – 6 लाख रुपये		

यद्यपि सरकारों द्वारा वन्य जीव से हुई क्षति पूर्ति के लिये ग्रामीणों को उपरोक्त धनराशि दिये जाने का प्रावधान है, राजाजी नेशनल पार्क के समीप स्थित गाँवों में किये गये एक शोध से यह पता चलता है कि यह प्रक्रिया लम्बी एवं जटिल है जिस कारण केवल 36 प्रतिशत ग्रामीण ही अनुग्रह धनराशि के लिये प्रार्थना पत्र दाखिल करते हैं। अतः अनुग्रह धनराशि का त्वरित वितरण का कार्य मुख्य रूप से किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त सुअरों की बढ़ती हुई संख्या को नियंत्रित करने के लिये इन वन्य जीवों को मारने की अनुमति ग्रामीण स्तर पर प्रशिक्षित शिकारियों व बन्दूकों की अनुपलब्धता के कारण कारगर नहीं हो रही है। बन्दरों को मारने में उनसे जुड़ी धार्मिक आस्था भी आड़े आ रही है। साथ ही बन्दरों को पकड़कर बाड़ों में सीमित रखने की योजना, इनको व इनके खाने में आने वाले अत्यधिक खर्च के कारण सफल होती नहीं दिखती है।

नीतिगत सुझाव

उत्तराखण्ड राज्य में मानव वन्यजीव संघर्ष की बढ़ती हुई घटनाओं को देखते हुए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि राज्य में मानव-वन्यजीव संघर्ष अपने चरम की ओर अग्रसर है। समय रहते यदि इस समस्या के समाधान हेतु ठोस प्रयास नहीं किये गये तो भविष्य में यह समस्या भयावह रूप ले सकती है। राज्य में मानव-वन्यजीव संघर्ष को न्यून/समाप्त करने के लिये कुछ नीतिगत सुझाव निम्नवत हैं।

- सरकारों द्वारा मानव-वन्यजीव संघर्ष को रोकने के लिये किये जाने वाले पारम्परिक उपाय कई स्थानों पर असफल हो रहे हैं। उदाहरणार्थ, हाथी अपनी विलक्षण बुद्धिमत्ता के कारण उन्हें रोकने के लिये प्रयोग किये जाने वाले परम्परागत उपायों यथा हाथी गड्डों तथा विद्युत बाड़ों को अक्सर समझ लेते हैं जिस कारण यह परम्परागत विधियों कारगर संघर्ष उपसमन नही कर पाती। अतः मानव-वन्यजीव संघर्ष के उपसमन हेतु परम्परागत उपायों के साथ-साथ प्रभावी, रचनात्मक तथा नवाचार उपायों का प्रयोग किया जाना अतिआवश्यक है।

- वायनाड (केरल) के एक संसाधन युक्त व्यक्ति ने मधुमक्खियों के उच्च स्वरमान की ध्वनि का उपयोग कर हाथियों को कृषि क्षेत्र में प्रवेश करने से रोकने का सफल नवाचार उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार के नवाचार उपायों की खोज राज्य में मानव-वन्यजीव संघर्ष को न्यून करने के लिये किया जाना चाहिये।
- साथ ही अभिनव युक्तियों का प्रयोग भी मानव-वन्यजीव संघर्ष को कम करने के लिये किया जा सकता है। ड्रोन तकनीक या मानव रहित वायवीय यान तथा माइक्रोचिपिंग का प्रयोग वन्यजीव की स्थिति व आवागमन को जानने के लिये किया जा सकता है।
- इसके अतिरिक्त प्राकृतिक अधिवासों व उनमें विद्यमान विभिन्न स्तर के वन्यजीवों की वास्तविक संख्या/स्थिति का आंकलन किये जाने हेतु गहन शोध की आवश्यकता है। जिसके आधार पर मानव-वन्यजीव संघर्ष के उपशमन हेतु ठोस उपाय व रणनीतियाँ बनाई जा सकती है।
- वन्यजीवों के प्राकृतिक अधिवासों की गुणवत्ता में सुधार सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य है जिसे प्राथमिकता के साथ किया जाना चाहिये। यहां "वासस्थल सुधार" का तात्पर्य खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक स्तर के जीवों की आनुपातिक संख्या का उत्तम या श्रेष्ठतम रूप में होने से है। प्राकृतिक अधिवासों में खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक स्तर के वन्यजीव हेतु उपयुक्त मात्रा में भोजन तथा जल उपलब्ध होने से ही वन्यजीव वन तक सीमित रह सकता है। वन्यजीव को वन की सीमाओं तक सीमित रखना ही मानव वन्यजीव संघर्ष का स्थायी समाधान भी है।

ग्रामीण सूचना प्रणाली द्वारा हिमालय के ग्रामीण परिवेश का विकास

दीपिका बिष्ट और राकेश कुमार सिंह

गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

ग्रामीण सूचना प्रणाली का परिचय

ग्रामीण सूचना प्रणाली (विलेज इनफार्मेशन सिस्टम) एक प्रकार की इंटरनेट आधारित सूचना प्रणाली है। जिसमें गावों से सम्बंधित जानकारी का तकनीकी वातावरण में कुशल प्रबंधन किया जा रहा है। ये प्रणाली योजनाकारों द्वारा गावों के लिए नई योजनाओं के विकास करने व कुशल कार्यान्वयन में अत्यधिक मदद करेगा। सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता दर्शाने के क्रम में हिमालयी राज्य उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा जिले के ग्राम समूह के लिए ग्रामीण सूचना प्रणाली का विकास किया जा रहा है। यह ज्ञान पर आधारित निर्णय निर्माण में मदद करेगा।

ग्रामीण सूचना प्रणाली की आवश्यकता

ग्राम स्तर में सभी प्रकार के मौजूदा साधनों के विषय में शुद्ध, सटीक व अद्यतन जानकारी के अभाव में सरकार, प्रशासनिक वर्ग व देश के नागरिक योजना, विकास व नियंत्रण के लिए कमजोर महसूस करते हैं। इसके अलावा सटीक जानकारी ना होने के कारण इन स्थानों पर उपलब्ध प्राकृतिक व सामाजिक सुविधाओं का पूर्णतया व उचित उपयोग करना बहुत मुश्किल कार्य हो जाता है, अतः इन जरूरतों को पूरा करने के लिए ग्रामीण सूचना प्रणाली एक प्रयास है। एक उपयुक्त सूचना प्रणाली के ग्राम स्तर पर आवश्यकता है, जो योजना व विकास के क्षेत्र में अधिक प्रभावी व सार्थक दिशा की ओर अग्रसर हो।

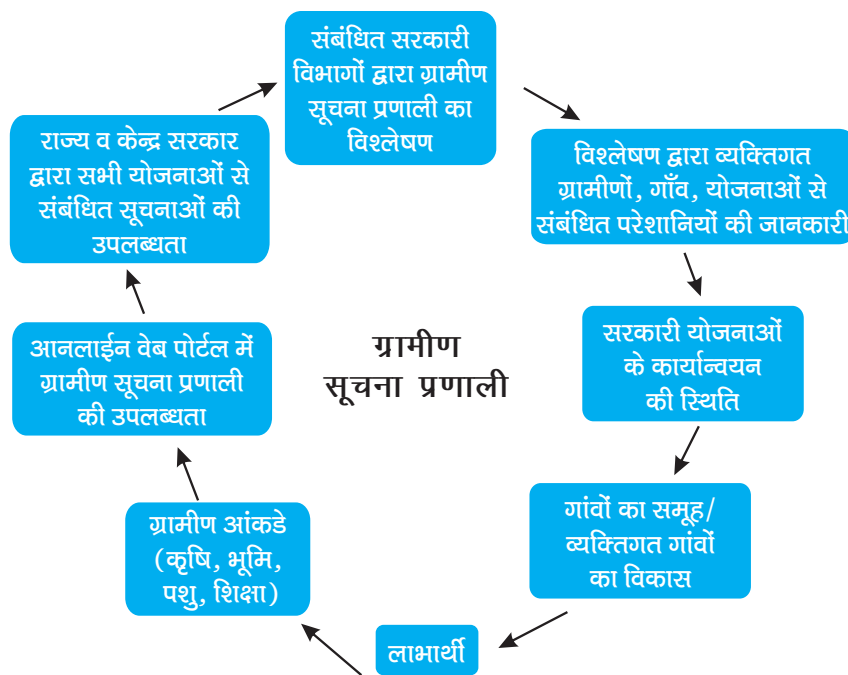
ग्रामीण सूचना प्रणाली की कार्यप्रणाली

ग्रामीण सूचना प्रणाली को अस्तित्व में लाने के लिए उपयोग में लायी गयी प्रक्रिया इस प्रकार है। सर्वप्रथम जानकारी प्राप्त करने के लिए दो गांवों का भ्रमण किया गया। डेटाबेस निर्माण करने के लिए ग्राम-समूह का चयन किया गया। सभी क्षेत्रों से सम्पूर्ण व सटीक जानकारी प्राप्त करने के लिए एक प्रश्नावली तैयारकी गयी। इस प्रश्नावली में गाँव से सम्बंधित हर प्रकार की जानकारी को शामिल किया गया है जैसे भूमि, कृषि, शिक्षा, पशु, प्राकृतिक स्रोत आदि। इन विभिन्न क्षेत्रों में जानकारी प्राप्त करने के लिए चयनित गांवों, वहां के निवासियों से घर-घर जाकर मुलाकात कर पूर्ण जानकारी एकत्रित की गयी। इसके अलावा इन गांवों के बारे में सरकारी विभागों व इंटरनेट से भी जानकारी एकत्रित की गयी है। इस जानकारी के आधार पर ग्रामीण सूचना का डेटाबेस तैयार किया जा रहा है। इस डेटाबेस को ऑनलाइन पोर्टल से जोड़ कर जल्द ही ऑनलाइन उपलब्ध कराया जायेगा। इस प्रणाली को मूल रूप से गांवों व ग्रामीणों के विकास के लिए बनाया जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति इस प्रणाली का उपयोग गाँव की जानकारी प्राप्त करने के लिए कर सकेंगे।

ग्रामीण सूचना प्रणाली से सम्बंधित सम्पूर्ण जानकारी इसके वेब पोर्टल के “सांख्यिकीय जानकारी” सूची में उपलब्ध करायी जाएगी। प्रत्येक जानकारी को ३ मुख्य भागों में वर्गीकृत किया गया है:

- **ग्रिड दर्शन**— इस भाग में बिना किसी निर्णायक जानकारी को प्रकट किये, सम्पूर्ण जानकारी को दर्शाया जायेगा।
- **पूर्ण दर्शन**— इस भाग में उपभोक्ता को अपनी सम्पूर्ण जानकारी देखने के लिए पहचान संख्या की मदद से लॉग इन करना होगा।
- **खोज दर्शन**— इस भाग को मूलतः विभागीय खोज के लिए बनाया गया है। इसमें जानकारी की खोज 2 प्रकार से की जा सकेगी। पहले तरीके से विभागीय अधिकारी को निश्चित गांव के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए उस गांव की पहचान संख्या का उपयोग करना होगा। दुसरे तरीके के अनुसार विभागीय अधिकारियों को व्यक्तिगत पहचान संख्या के आधार पर उस व्यक्ति की सम्पूर्ण विभागीय जानकारी प्रदान कर दी जाएगी।

सरकारी योजनाओं के बारे में जानकारी का वर्गीकरण विभागीय तौर पर किया गया है। इसमें सर्वप्रथम हिमालयी राज्य उत्तराखंड में चल रही सभी राज्य व केंद्र सरकार की योजनाओं की जानकारी दी गयी है। इसके दुसरे भाग में सरकारी योजनाओं का तुलनात्मक विश्लेषण दिया गया है। इसमें दो प्रकार से जानकारी देखी जा सकती है।



चित्र 1 : ग्रामीण सूचना प्रणाली की कार्यप्रणाली

पर्यावरण संस्थान द्वारा प्रयास

ग्रामीण सूचना तंत्र के विकास की परियोजना गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान द्वारा राष्ट्रीय हिमालयी अध्ययन मिशन की मदद से चलाई जा रही है। इस परियोजना को 3

वर्ष के लिए वित्तीय सहायता राष्ट्रीय हिमालयी अध्ययन मिशन से प्राप्त हो रही है। यह वित्तीय सहायता राष्ट्रीय हिमालयी अध्ययन मिशन द्वारा हिमालयी फेलोशिप अनुदान के तहत प्रदान की जा रही है। इसके अनुसार परियोजना के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- ग्रामों के विकास से संबंधित कुशल निर्णय-निर्माण में सहायता करने के लिए ग्रामीण सूचना प्रणाली का विकास करना।
- ग्रामों की प्रांसगिक जानकारी को उपलब्ध कराने के लिए डेटाबेस का निर्माण करना।
- ग्रामीण सूचना प्रणाली से हितधारकों व योजनाकारों का क्षमता निर्माण।

इस परियोजना को सफल बनाने के लिए हिमालयी राज्य उत्तराखंड के अल्मोड़ा जिले के 4 गावों का चयन किया गया है। ये गाँव इस प्रकार हैं— सकार, भगतोला, दाड़िमखोला व ज्युला। इन गावों से संबन्धित प्राथमिक डाटा शोधार्थी द्वारा घर- घर जाकर व्यक्तिगत रूप से एकत्रित किया गया। ग्राम संबन्धित डाटा में पारिवारिक जानकारी, शिक्षा, कृषि, पशु, भूमि, आय, प्राकृतिक संसाधन आदि का समावेश है। यह सूचना तंत्र जल्द ही ऑनलाइन कार्यान्वित कर दिया जायेगा।

ग्रामीण सूचना प्रणाली के लाभ

किसी भी समस्या के समाधान के लिए एक उपयुक्त योजना की आवश्यकता होती है तथा उस योजना के कुशल कार्य करने के लिए स्थानिक व गैर स्थानिक जानकारी की जरूरत होती है। आधार-सामग्री व जानकारी के अभाव में किसी भी योजना की सफलता मुमकिन नहीं है। गाँव के सभी स्रोतों की सटीक जानकारी की अनुपस्थिति के कारण निर्णयकर्ता गावों के लिए योजनाओं के निर्माण के सन्दर्भ में योजनकारों व प्रशासनिक अधिकारियों के साथ मजबूर महसूस करते हैं। ये सूचना प्रणाली एक ऑनलाइन डाटाबेस प्रदान करने में सक्षम है। इस डाटाबेस में ग्रामस्तर की जानकारी जैसे जनगणना, शिक्षा, रोजगार, कृषि, भूमि, प्राकृतिक संसाधन, पशु, भूमि, आदि उपलब्ध कराए जा रहे हैं। यह सूचना तंत्र जिला प्रशासन व अन्य विभाग के अफसरों को निर्धारित ग्राम समूह के विकास के सम्बन्ध में योजना व निर्णय निर्माण में मदद करेगा। इसके साथ-साथ इस डाटाबेस का उपयोग ग्रामीण भी कर सकेंगे।

इस प्रणाली का उपयोग प्रशासनिक अधिकारी, योजनकारों, शोधार्थी "निर्णय समर्थन तंत्र" के एक साधन की तरह कर सकेंगे। ये प्रत्येक घर, गाँव, गाँवों में चल रही योजनाओं, आदि के बारे में उपलब्ध जानकारी से शीघ्र निर्णय-निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये निर्णय-निर्माण में पहले से मौजूद अन्य सूचना तंत्रों की तुलना में बहुत कम समय लेता है। गाँवों से सम्बन्धित जानकारियों को अमल में लाने व विभिन्न योजनाओं को शुरू करने में ग्रामीण सूचना प्रणाली से विभिन्न विभाग, गाँवों व ग्रामीणों के विकास के लिए लाभान्वित हो पायेंगे।

ग्रामीण सूचना प्रणाली का भविष्य

ग्रामीण सूचना प्रणाली एक प्रकार की इंटरनेट सम्बन्धित सूचना प्रणाली है। इस सूचना प्रणाली के ऑनलाइन होने के उपरान्त या तो इसका कुशल प्रबंधन पर्यावरण संस्थान द्वारा किया जायेगा या फिर इसे जिला प्रशासन या राज्य सरकार को सौंप दिया जायेगा जिससे इसका कुशल योजना व विकास कार्यान्वयन में किया जा सके।

हिप्पोपी तिबेताना (दरसी-बकथोन) – एक बहुउपयोगी प्रजाति

अंजली बरोला, अमित बहुखंडी, डा० रणबीर सिंह रावल एवं डा० इन्द्र दत्त भट्ट
गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

हिमालय भारतीय प्रायद्वीप में एक पर्वत श्रृंखला है जो अपने आप में एक मुख्य पारिस्थितिक तंत्र है जिसमें लगभग 8,000 पुष्पीय पौधों (47.06%) पाये जाते हैं। प्राचीन काल से ही मनुष्य भोजन के लिए इन पादप प्रजातियों पर निर्भर रहे हैं। मुख्यतः ग्रामीण परिवेश के लोगों की निर्भरता जंगलों में मिलने वाले जंगली फलों पर रहती है। इसी कारण भारतीय हिमालयी क्षेत्र की जंगली पादप प्रजातियों का विशेष महत्व रहा है। इनका उपयोग चारा प्रजाति के रूप में, दवा, लकड़ी, पारंपरिक त्योहारों, रंग बनाने एवं जंगली जानवरों, पक्षियों आदि को छाया एवं आवास देने में मुख्य भूमिका निभा रहा है। वर्तमान समय में मनुष्य अपने शरीर को व्याधियों से बचाने एवं स्वस्थ रखने के लिए सचेत हो गया है एवं खानपान में प्राकृतिक तत्वों का इस्तेमाल अधिक से अधिक करने लगा है।

उत्तराखंड में स्थित जौहार-वैली प्राचीन समय से ही अपनी बोलचाल, खानपान, वेश-भूषा, पहनावा आदि के लिए विश्वभर में आकर्षण का केंद्र रही है। यह क्षेत्र गौरी-गंगा के तट पर स्थित है एवं यहाँ का मुख्य समाज भोटिया जन-जाति का है जो अपनी पारंपरिक ज्ञान, भाषा एवं वेश-भूषा के लिए जाने जाते हैं। साथ ही साथ इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान एवं पहचान भारत-तिब्बत देशों के बीच व्यापार एवं सामान के आदान-प्रदान के रूप रही है। भोटिया समाज अपनी पारंपरिक सभ्यताओं एवं ज्ञान के आधार पर बहुमूल्य औषधीय पौधों जैसे कुटकी, वन तुलसी, कीड़ा जड़ी आदि का इस्तेमाल दवा बनाने एवं इन्हें उगाकर बाजार में बेचने के लिए करता है।

शोध द्वारा यह तथ्य स्थापित हो गया है कि जंगली पादप प्रजातियों में पौष्टिक तत्वों की मात्रा अत्यधिक है। इनके लगातार उपयोग से कुपोषण जैसे कारणों को कम करने में अत्यधिक लाभ हुआ है। जंगली फलों में पाये जाने वाले खनिज लवणों में विटामिन सी, ए, डी, आयरन, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट सोडियम, पोटैशियम आदि मुख्य हैं। उत्तराखंड के हिमालय क्षेत्रों में बहुतायत मात्रा में विभिन्न प्रकार के जंगली फल जैसे काफल, किलमौडा, हिप्पोपी, हिसालू आदि उगते हैं। जिनका उपयोग ताजा-फलों के रूप में एवं विभिन्न प्रकार के पौष्टिक पदार्थों जैसे जूस, जैम, चटनी आदि के रूप में किया जाता है। पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में जंगली पादप प्रजातियों में भिन्नता होने के साथ-साथ उनके उपयोग में भी भिन्नता है जो समुदाय विशेष की मूलभूत आवश्यकताओं का पूर्ण करती है। वर्तमान में इन क्षेत्रों में नर्सरी निर्माण द्वारा इन औषधीय पादपों को उगाया जाता है। इसी क्षेत्र में बहुतायत में मिलने वाला बहुमूल्य पौधा हिप्पोपी जिसे सी-बकथोन भी कहते हैं इस क्षेत्र की आवश्यकता को पूर्ण करता है।

हिप्पोपी प्रजाति परिस्थितीय एवं वाणिज्यिक रूप में महत्वपूर्ण पौधे हैं जिसमें पीला या नारंगी फल आते हैं क्योंकि इसमें कैरोटीन की अधिक मात्रा पाई जाती है। विश्वभर में हिप्पोपी की लगभग सात प्रजातियाँ मिलती हैं जिसमें मुख्यतः तीन प्रजातियाँ – हिप्पोपी सेलसीफोलिया, हिप्पोपी रैर्मिनोइड, हिप्पोपी तिबेताना भारतीय हिमालयी क्षेत्रों जैसे हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, सिकिकम, अरुणाचल प्रदेश में पायी जाती है (तालिका 1)। इस पौधे को गोल्डन बस, गोल्ड माईन आदि नामों से भी पुकारा जाता है क्योंकि इस पौधे का

फल, जड़, आदि दवा एवम् भोज्य पदार्थों को बनाने के लिये किया जाता है। हिप्पोपी प्रजातियों को पोषक तत्वों का भंडार भी कहा जाता है।

तालिका 1: भारतीय हिमालय क्षेत्र में पाये जाने वाले हिप्पोपी प्रजातियों का वितरण एवं शारीरिक विवरण

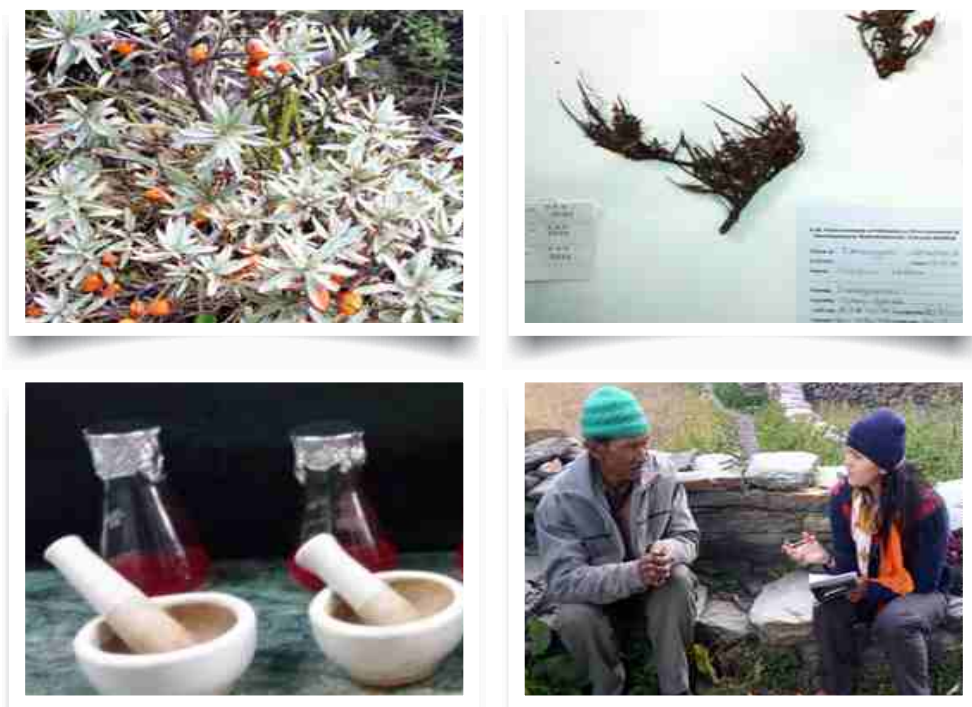
प्रजातियाँ	हिप्पोपी रैर्मिनोइड	हिप्पोपी सेलसीफोलिया	हिप्पोपी तिबेताना
वितरण	भारत, चीन, तिब्बत	भारत,नेपाल,भूटान, तिब्बत	भारत, चीन, तिब्बत
समुद्र स्तर से उँचाई	2850 – 4500	2700 – 3700	3000 – 5200
फूल आने का समय	मई	जून	मई
फल आने का समय	सितम्बर – अक्टूबर	अक्टूबर – नवम्बर	अगस्त – सितम्बर
झाड़ी का आकार (मी.)	2.5	4.9	0.2–0.6
फल का आकार (ग्राम) (100 फल)	8.27	30.35	15.21
फल का रंग	लाल– नारंगी	पीला	नारंगी

कैलाश परियोजना के अंतर्गत सितम्बर, 2016 में जौहार वैली की यात्रा आयोजित की गयी, जिसमें हमें वहाँ के स्थानीय लोगों से वार्तालाप करने अवसर मिला, हमने उनके पारंपरिक खान-पान में इस्तेमाल होने वाला चूक (हिप्पोपी तिबेताना) और उसकी महत्वता को जाना। हिप्पोपी के महत्व को जानने के बाद जौहार वैली के मिलन हिमनद (शून्य पॉइंट) से हिप्पोपी तिबेताना के फलों को एकत्रित कर के प्रयोगशाला में लाया गया। हिप्पोपी तिबेताना के फलों को 4 अलग-अलग सॉल्वेंट्स (इथेनॉल, मिथेनॉल, एसीटोन, आसुत जल) से उपचारित किया गया ताकि उसमें उपलब्ध पोषक तत्व की मात्रा का जाँच की जा सके (चित्र-1)। शोध द्वारा यह पता चला कि मिथेनॉल में उपचारित नमूनों में ज्यादा पोषक तत्व पाए गए (तालिका-2)। इसके फलों में अत्यधिक मात्रा में विटामिन, मिनरल्स आदि भी मिलते हैं (चित्र-2)।

तालिका 2: हिप्पोपी तिबेताना में पाये गये विभिन्न पोषण तत्व- जौहार वैली, पश्चिमी हिमालय

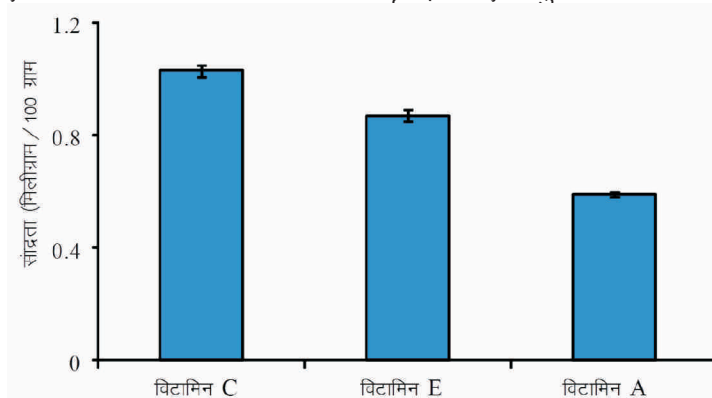
क्रम संख्या	सोल्वेंट	कार्बोहाइड्रेट (मिलीग्राम/100 ग्राम)	प्रोटीन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	सोडियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)	पोटैशियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)
1	इथेनॉल	1.72±0.01	0.62±0.01	0.06±0.01	1.58±0.01
2	मिथेनॉल	2.05±0.03	0.67±0.02	0.27±0.01	3.25±0.01
3	एसीटोन	1.48±0.05	0.64±0.01	0.16±0.01	2.37±0.04
4	आसुत जल	1.25±0.02	0.57±0.01	0.04±0.01	0.71±0.03

हिप्पोपी फल का उपयोग भोटिया जाति के लोग जूस, चूक, जेली, जैम जैसे पदार्थों को बनाने में करते हैं। जो अत्यधिक पोषक एवं कीमती होता है। इसके फलों द्वारा बनाया जूस एवं चूक भोटिया जाति के लोग बाजार में 300-400₹ प्रतिकिलो की दर पर बेचते हैं। साथ ही साथ अपने पारंपरिक त्यौहार में आदान-प्रदान करते हैं। इसके तेल का उपयोग जलने व घावों को ठीक करने हेतु भी किया जाता है। यह वृक्षनुमा झाड़ी, वायुमंडलीय गैस नाइट्रोजन के अवशोषण में भी सहायक होता है। यह जानवरों के द्वारा चारा हेतु उपयोग में भी लाया जाता है। इसमें पाये जाने वाले तत्व जानवरों के रोमो को स्वस्थ एवं चमकदार बनाये रखने में सहायक होता है। इसी कारण इसे शाइनिंग हॉर्स नाम से भी जाना जाता है। सी-बकथ्रोन में पाये जाने वाले पोषक तत्व, शरीर की प्रतिरोधक प्रणाली को सुदृढ़ बनाने में भी सहायक होता है।



चित्र 1: कैलाश परियोजना के अंतर्गत जौहार वैली की यात्रा में होने वाली विभिन्न गतिविधियाँ – (क) हिप्पोपी तिबेताना, (ख) हरबेरियम चित्रण, (ग) निश्कर्षण विधि, (घ) प्रलेखन

वर्तमान समय में हिप्पोपी प्रजाति के ऊपर विभिन्न क्षेत्रों में शोध कार्य चल रहे हैं जो आने वाले समय में लाभदायक होंगे और साथ ही साथ इस बहुमूल्य प्रजाति पर विश्वभर के लोगों का ध्यान आकर्षित करेंगे। जिसकी मदद से इसका उपयोग औषधि निर्माण, पोषक पदार्थों के निर्माण एवं जैव-विविधता संरक्षण में भी लाभदायक होंगे। साथ ही उक्त जाति के फलों पर किये गए शोधों द्वारा विभिन्न दिशाओं की जानकारी की कमी को पूर्ण करेंगे एवं समाज को अपने आजीविका वृद्धि में एवं कृपोषण की रोकथाम में अहम भूमिका निभायेंगे।



चित्र 2: हिप्पोपी तिबेताना में विभिन्न विटामिन (मिलीग्राम/100 ग्राम) की मात्रा

कंप्यूटर द्वारा हिंदी टाइपिंग एवं हिंदी अनुवाद

राकेश कुमार सिंह और डा० आर० सी० प्रसाद
गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में कम्प्यूटर और इंटरनेट के अनुकूल हुए बिना किसी भाषा या लिपि के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग सकता है। आमतौर पर यह धारणा है कि कंप्यूटरों का बुनियादी आधार अंग्रेजी है, यह धारणा सिर से गलत है। कंप्यूटर कि भाषा अंकों की भाषा है जिसमें केवल 0 और 1 अंक आते हैं। युनिकोड कोन्सोर्टियम द्वारा सूचना विनिमय के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मानक—कूट निर्धारित किए जाने के बाद संसार की लगभग सभी लिखित लिपियों के अक्षर—चिह्नों को अनुपम पहचान मिल गई है और अब ये सूचना विनिमय के लिए अमेरिकी मानक कूटों (अमेरिकन स्टैंडर्ड कोड फॉर इन्फर्मेशन एक्सचेंज) के सबसेट कोडपेज पर आश्रित नहीं हैं। हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी युनिकोड मानक कूट निर्धारित हो चुके हैं तथा सभी कम्प्यूटर प्रचालन प्रणालियां, इंटरनेट सेवा प्रदाताओं, वेबसाइट होस्टिंग करने वाली संस्थाओं द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे हैं। इससे हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि में विश्व—संचार का मार्ग प्रशस्त हुआ है। हिन्दी में वेबसाइटों, ब्लॉग, ईमेल—समूह, ऑनलाइन परिचर्चा—समूह आदि की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है तथा भारी मात्रा में साहित्य तथा सूचना सामग्री इंटरनेट पर हिन्दी में भी उपलब्ध हो रही है।

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अब मोबाईल फोन पर संक्षिप्त सन्देश (एसएमएस) की सुविधा उपलब्ध हो गई है। विभिन्न भाषाओं की लिपियों के पाठों को दूसरी भाषा की लिपि में बदलने के लिए भी कुछ ऑन—लाइन प्रोग्राम उपलब्ध हो गए हैं। सिर्फ एक क्लिक करते ही अंग्रेजी से हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में बदलने वाले अनेकों ऑनलाइन प्रोग्राम भी वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। हालांकि इसमें कुछ खामियाँ हैं, जिनके समाधान का प्रयास जारी है।

कंप्यूटर द्वारा हिंदी टाइपिंग

हिंदी टाइपिंग से अनभिज्ञ बहुत से लोगों को भ्रम होता है कि कंप्यूटर पर हिंदी टाइप करने के लिए टाइपिंग सीखनी आवश्यक है। परन्तु आजकल यूनिकोड के आगमन के पश्चात् हिंदी टाइपिंग हेतु कंप्यूटर पर कई फोनेटिक टूल उपलब्ध हैं जिनसे आप अंग्रेजी में लिखेंगे और वह अपने आप हिंदी में बदल कर टाइप हो जाएगा। अतः लोगों को यह बात मन से निकाल देनी चाहिए कि कंप्यूटर पर हिंदी टाइपिंग के लिए अलग से टाइपिंग सीखने की जरूरत होती है।

हिंदी टाइपिंग की विधियाँ

हिंदी टाइपिंग की कई विधियाँ उपलब्ध हैं पर सामान्य प्रचलन में निम्न तीन विधियाँ आती हैं:

(क) **रेमिंगटन टाइपिंग:** टाइपिंग का यह तरीका बहुत पुराना है और अब यह तरीका काफी हद तक आउटडेटेड हो चुका है। यह एक टच टाइपिंग विधि है। इसके लिए पहले से टाइपराइटर पर हिंदी टाइपिंग

सीखी होनी चाहिए। यह सिर्फ उनके लिए उपयोगी है जिन्होंने पहले से टाइपराइटर पर हिंदी टाइपिंग सीखी हो तथा इसके अभ्यस्त हों। कंप्यूटर पर नए सिरे से सीखने हेतु यह तरीका उपयुक्त नहीं है।

(ख) **इनस्क्रिप्ट टाइपिंग:** इसका विकास भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने किया है। यह भी एक टच टाइपिंग प्रणाली है। यह विधि भारतीय भाषाओं में टाइपिंग की सर्वाधिक वैज्ञानिक विधि है। इस विधि से कंप्यूटर पर सर्वाधिक गति से हिंदी में टाइपिंग की जा सकती है। यद्यपि यह हिंदी टाइपिंग की सर्वश्रेष्ठ विधि है लेकिन इसके लिए भी कुछ समय अभ्यास करना पड़ता है।

(ग) **फोनेटिक टाइपिंग:** यह हिंदी टाइप करने का सबसे आसान तथा वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित तरीका है। इसकी खासियत है कि इसे सीखने में बिल्कुल समय नहीं लगता। आप सीधे हिंदी में लिखना शुरू कर सकते हैं। उदाहरण के लिए आपको 'राम' लिखना है तो आप टाइप करेंगे 'ram'। यह भारतीय भाषाओं के ध्वनियात्मक गुण पर आधारित है अर्थात् "जैसा बोला जाता है वैसे ही लिखा जाता है"। अतः इंटरनेट पर अधिकतर हिंदी प्रयोगकर्ता इसी विधि का उपयोग करते हैं। अधिकतर नई साइटें तथा सॉफ्टवेयर भी इसी को अपना रहे हैं।

कंप्यूटर पर हिंदी शब्द दिखाई न देने की समस्या

कंप्यूटर में विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टम चाहे कोई भी हो उसमें हिंदी शब्द दिखाई देने के लिए बस एक अदद यूनिकोड हिंदी फॉन्ट होना आवश्यक है। विंडोज एक्सपी तथा उसके बाद के सभी ऑपरेटिंग सिस्टम में मंगल नाम का यूनिकोड फॉन्ट पहले से ही होता है। अन्य ऑपरेटिंग सिस्टमों के लिए यह फॉन्ट डाउनलोड किया जा सकता है। इस फॉन्ट को डाउनलोड करके फॉन्ट्स डायरेक्ट्री में कॉपी करने की आवश्यकता होती है और यह इंस्टाल हो जाता है। अधिकतर मामलों में कंप्यूटर पर हिंदी शब्द दिखाई न देने का यही कारण होता है। वेबसाइटों पर हिंदी दिखाई न देने का दूसरा कारण हो सकता है वेब ब्राउजर में करैक्टर एन्कोडिंग का सही न होना। इसके लिए वेब ब्राउजर के व्यू मीनू में करैक्टर एन्कोडिंग को यूनिकोड (यू.टी.फ.—8) पर सैट करें। ऐसा करने के बाद वेब ब्राउजर में हिंदी अच्छी तरह दिखाई देगी। यद्यपि सामान्य ऐप्लीकेशन जैसे वर्डप्रेस, इंटरनेट एक्सप्लोरर आदि में हिंदी टाइप करने के लिए एक यूनिकोड फॉन्ट का होना ही पर्याप्त है लेकिन विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टम में हर जगह हिंदी लिखने हेतु हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का सपोर्ट इनेबल किया जाना चाहिए।

विंडोज 10 ऑपरेटिंग सिस्टम में हिंदी सपोर्ट इनेबल करने की प्रक्रिया

- कृपया कंट्रोल पैनल पर क्लिक करें।
- यहां, कृपया लैंग्वेज (भाषा) पर क्लिक करें।
- कृपया ऐड लैंग्वेज (भाषा जोड़ें) का चयन करें।
- कृपया हिंदी भाषा का चयन करें और ऐड (जोड़ें) पर क्लिक करें।
- अब नया माइक्रोसॉफ्ट वर्ड दस्तावेज खोलें। टास्क बार (कार्य पट्टी) से ENG पर क्लिक करें (नीचे दाहिनी तरफ) तथा हिंदी ट्रेडिशनल कीबोर्ड (हिंदी पारंपरिक कीबोर्ड) का चयन करें।
- अब आप माइक्रोसॉफ्ट वर्ड तथा अन्य दस्तावेजों में हिंदी में टाइप कर सकते हैं।

एक बार ऐसा कर लेने के बाद आप विंडोज में सभी यूनिकोड समर्थित ऐप्लीकेशन आदि हर जगह हिंदी में लिख सकते हैं यहाँ तक कि फाइलों के नाम भी हिंदी में दे सकते हैं।

फोनेटिक हिंदी टाइपिंग के लिए ऑनलाइन तथा ऑफलाइन टूल

(क) **ऑनलाइन टूल्स:** ऑनलाइन फोनेटिक हिंदी टाइपिंग के लिए सम्बंधित वेब साइट पर जाकर वहाँ फोनेटिक विधि द्वारा हिंदी में टाइप करके फिर उसे कॉपी करके जहाँ लिखना हो वहाँ पेस्ट करते हैं। यह तरीका उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इसमें कॉपी पेस्ट का झंझट होता है। चूँकि ये टूल्स अधिकतर सर्वर पर आधारित होते हैं अतः इनकी टाइपिंग स्पीड भी कम होती है। इन टूल्स का एकमात्र लाभ यह है कि अपने कंप्यूटर से दूर होने पर (घर से बाहर आदि) आप बिना कोई टूल डाउनलोड किए साइट पर जाकर हिंदी में लिख सकते हैं। उदाहरण के लिए हिंदिनी तथा यूपीनागरी नामक टूल्स।

(ख) **ऑफलाइन टूल्स:** ऑफलाइन टूल्स को एक बार डाउनलोड करके उसे कंप्यूटर में इंस्टाल करना आवश्यक होता है। उसके बाद किसी भी विंडोज ऐप्लीकेशन जैसे वर्डपैड, माइक्रोसॉफ्ट वर्ड, गूगल टॉक आदि में कहीं भी सीधे हिंदी में लिख सकते हैं। इस तरह के टूल्स को फोनेटिक आई.एम.ई. (इनपुट मेथड एडिटर) कहा जाता है। इन टूल्स की स्पीड तेज होने के साथ ही इनके द्वारा लिखना कहीं अधिक सुविधाजनक होता है। इसके अतिरिक्त इनमें कई अन्य फंक्शन भी होते हैं। उदाहरण के लिए बरहा आई.एम.ई., हिंदीराइटर, हिंदी इंडिक आई.एम.ई. तथा गूगल इनपुट टूल्स आदि सर्वाधिक प्रचलित ऑफलाइन फोनेटिक टूल्स हैं।

बरहा आई.एम.ई. तथा गूगल इनपुट टूल्स उपरोक्त में सरलतम टूल्स हैं। इन टूल्स को डाउनलोड तथा इंस्टाल करें। रन करने पर टूल्स का आइकॉन आपके टास्कबार में सिस्टमट्रे में आ जाएगा। सिस्टमट्रे आइकॉन पर राइट क्लिक करिए तथा लैंग्वेज हिन्दी चुनिए। अब आप हिंदी में टाइप करने के लिए तैयार हैं। कोई भी शब्द हिंदी में टाइप करने हेतु उसकी समांतर स्पैलिंग इंग्लिश में टाइप कीजिए। हिंदी तथा अंग्रेजी में स्विच करने के लिए एफ11 या एफ12 कुँजी का प्रयोग करें अर्थात् एक साथ दोनों भाषाओं में लिखा जा सकता है। विंडोज तथा लिनक्स ऑपरेटिंग सिस्टम के अधिकतर नए संस्करणों में रेमिंगटन, फोनेटिक तथा इनस्क्रिप्ट तीनों प्रकार के कीबोर्ड अंतर्निमित होते हैं। मैकिंटोश ऑपरेटिंग सिस्टम हेतु केवल इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड उपलब्ध है।

गूगल वाईस टाइपिंग (अपनी आवाज के साथ टाइप करें)

आप एक आसान तरीके से दस्तावेज में अपनी आवाज के साथ टाइप कर सकते हैं। फिलहाल, यह सुविधा क्रोम ब्राउजर में ही उपलब्ध है।

- सबसे पहले यह सुनिश्चित करें कि आपके कम्प्यूटर से एक माइक्रोफोन जुड़ा हुआ है और वह काम करता है तथा एक जी-मेल का यूजर आईडी-पासवर्ड होना जरूरी है।
- क्रोम ब्राउजर में <http://google.com> खोलें।
- गूगल एप्स पर क्लिक करके डवतम में से गूगल डॉक्स ऐप पर क्लिक करके जी-मेल आईडी से लॉगिंग करें।
- गूगल डॉक्स में एक नया दस्तावेज खोलें।
- टूल (उपकरण) मेनू > वाईस टाइपिंग पर क्लिक करें। पॉप-अप माइक्रोफोन बॉक्स से भाषा (हिंदी) का चयन करें।
- आप पाठ में बोलने के लिए तैयार हैं, तो माइक्रोफोन बॉक्स पर क्लिक करें।
- सामान्य गति और वोल्यूम से स्पष्ट रूप से अपना पाठ बोलें।
- रोकने के लिए माइक्रोफोन पर पुनः क्लिक करें।

आवाज के साथ टाइप करते हुए अगर गलती हो जाए तो गलती पर कर्सर ले जाकर और माइक्रोफोन से पुनः बोल कर ठीक कर सकते हैं। गलती सुधारने के बाद आप आवाज टाइपिंग जारी रखना चाहते हैं, वहां कर्सर वापस ले जाए।

कंप्यूटर द्वारा हिंदी अनुवाद

कंप्यूटर की दुनिया में मशीन अनुवाद एक आकर्षक चुनौती के रूप में देखा गया है। बहुत मुश्किल भी, किंतु बहुत वांछित भी। गूगल ने पिछले पांच-छह साल के भीतर ही भारतीय भाषाओं के लिए तकनीकी क्षेत्र में इतना कार्य कर दिया है जो किसी अन्य कंपनी ने पिछले तीन दशकों में भी नहीं किया था। इतनी सी अवधि में गूगल ने अपने सर्च इंजन के भारतीय भाषाई संस्करण शुरू किए, ब्लॉगर और जीमेल में भारतीय भाषाओं का समर्थन शुरू किया, भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर इनपुट देने के लिए कुछ बेहद सरल किंतु बेहद उपयोगी टूल (आईएमई, ट्रांसलिटरेशन टूल आदि) तैयार किए, भारतीय लिपियों के बीच पारस्परिक रूपांतर की सटीक सुविधा शुरू की, ऑनलाइन ऑफिस सॉफ्टवेयर में भारतीय भाषाओं के लिए समर्थन शुरू किया और अब अनुवाद की सुविधा लेकर आया है। गूगल ने पांच भारतीय भाषाओं में मशीनी अनुवाद की सुविधा शुरू की है। ये भाषाएं हैं: बंगला, गुजराती, तमिल, तेलुगू और कन्नड। हिंदी और उर्दू इसमें पहले ही शामिल कर ली गई थीं, इसलिए कुल मिलाकर सात भारतीय भाषाओं को गूगल ट्रांसलेट परियोजना के दायरे में ले आया गया है। गूगल ट्रांसलेट के संदर्भ में पहला और अहम सवाल यही उठता है कि क्या भारतीय भाषाओं को दुनिया की दूसरी भाषाओं के साथ पारस्परिक अनुवाद के मशीनी मंच पर ले आना एक प्रतीकात्मक मील का पत्थर भर है या वह व्यावहारिक संदर्भों में भी उपयोगी है? क्या इस मशीनी अनुवाद की गुणवत्ता इतनी है कि उस पर आंख मूंदकर भरोसा किया जा सके? गूगल की ज्यादातर परियोजनाओं की गुणवत्ता उच्च स्तरीय रही है। लेकिन दुभाग्य से अनुवाद के बारे में यही बात नहीं कही जा सकती। यहां गूगल के नजरिये में कुछ बुनियादी दिक्कतें दिखाई देती हैं। मशीनी अनुवाद मानवीय तर्कशक्ति के आगे हमेशा नतमस्तक ही रहेगा। लेकिन मशीन के पीछे भी इंसानी दिमाग ही है जो प्रयास करना नहीं छोड़ता। यही वजह है कि अंग्रेजी से हिंदी और हिंदी से अंग्रेजी अनुवाद सुविधा में धीरे-धीरे, क्रमिक सुधार आ रहा है।

गूगल ट्रांसलेट के प्रयोग की प्रक्रिया

- ✍ कृपया वेबसाइटूहववहसमणवण्पद खोलें ।
- ✍ अब दाहिनी ओर शीर्ष कोने पर प्रतीक से ट्रांसलेट (अनुवाद) का चयन करें ।
- ✍ कृपया, यहां बायीं तरफ अंग्रेजी भाषा और दाहिनी तरफ हिंदी भाषा का चुनाव करें ।
- ✍ कृपया अपना डेटा टाइप करें ।
- ✍ अंग्रेजी शब्द स्वचालित रूप से हिंदी भाषा में अनुवादित होंगे ।
- ✍ हिंदी शब्दों को कॉपी करें और किसी भी दस्तावेज में उपयोग करें ।

गूगल ट्रांसलेट में जब स्रोत के रूप में हिंदी का सीधा, सरल और छोटा सा वाक्य डालते हैं तो वाक्यों के अनुवाद पचास से अस्सी फीसदी तक शुद्धता के साथ अनुवाद किए जाते हैं। लेकिन थोड़े भी जटिल वाक्य डालने पर अनुवाद बिगड़ जाते हैं। जब हिंदी से गुजराती में अनुवाद करना चाहते हैं तो वह दो चरणों में सम्पन्न होता है, पहले हिंदी से अंग्रेजी अनुवाद और फिर अंग्रेजी से गुजराती अनुवाद। दुनिया की ज्यादातर अनुवाद प्रणालियां इसी तरह काम करती हैं क्योंकि दो भाषाओं के बीच सीधे अनुवाद ज्यादा लंबी प्रक्रिया है। हालांकि

गूगल ट्रांसलेट का भारतीय भाषा भाग अभी 'एल्फा' यानी प्रारंभिक अवस्था में है। उम्मीद की जानी चाहिए कि पहले 'बीटा' और फिर फाइनल रिलीज तक उसकी क्वालिटी में और सुधार आएगा और भारतीय भाषाएं इस सुविधा के जरिए और सम्पन्न तथा लोकप्रिय होंगी।

भारत सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग में अग्रणी स्थान पर है। प्रतिवर्ष देश को आई.टी. के खाते में अरबों रुपये का राजस्व प्राप्त होता है। किन्तु भारत के किसी भी कम्प्यूटर पाठ्यक्रम में आज तक सूचना विनिमय के लिए भारतीय मानक (आई.एस.सी.आई.आई.) और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरीय लिपि मानक (युनिकोड) को एक विषय तक के रूप में शामिल नहीं किया गया है। हिन्दी में कम्प्यूटिंग तो दूर की बात है। नए कम्प्यूटर आपरेटरों, प्रोग्रामरों, इंजीनियरों को सिर्फ यूएस-अंग्रेजी में ही प्रोग्रामिंग करना या डैटा प्रविष्ट करना आता है। हाल ही में सेंट्रल ब्यूरो ऑफ सेकेण्डरी एजुकेशन के नए पाठ्यक्रम में आई.एस.सी.आई.आई. और युनिकोड मानकों को एक विषय के रूप में शामिल किया गया है, जो एक स्तुत्य प्रयास है।

किसी भी भाषा का विकास और प्रचार किसी दया का मोहताज नहीं होता, यह तो स्वतः विकास की राह पर आगे बढ़ता रहता है। आज प्रिंट हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, फिल्में हो या सीरियल्स, डिस्कवरी, जिओग्राफिक, हिस्ट्री या कार्टून टीवी चैनल, सभी पर हिंदी कि तूती बोलती है। ये सभी तथ्य हमें हिंदी के उज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करते हैं।

मेदा (पालिगोनेटम वर्टीसिलेटम) एक बहुउपयोगी पादप प्रजाति

रेनू सुयाल एवं डा० रजवीर सिंह रावल
गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

परिचय

मेदा (*पालिगोनेटम हिमालयी*) क्षेत्र में पाए जाने वाले बहुउपयोगी पौधों का एक वंश है। इस वंश के पौधे पारंपरिक रूप में काफी लंबे समय से औषधि के लिए इस्तेमाल किये जाते रहे हैं। इस वंश में लगभग 60 प्रजातियां हैं जो दुनिया भर में अपने विभिन्न गुणों के लिए जानी जाती हैं। इसी वंश की एक प्रजाति है, पालिगोनेटम वर्टीसिलेटम जिसे आयुर्वेद में मेदा के नाम से जाना जाता है। मेदा शब्द का अर्थ म्यूसिलेज यानि लसदार पदार्थ जो इस पौधे के प्रकंद में पाया जाता है। यह प्रजाति अष्टवर्ग (आठ औषधीय पौधों के समूह) का एक महत्वपूर्ण अवयव है इस प्रजाति को प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने, पुनर्जन्मित और स्वास्थ्य के गुणों को बढ़ावा देने के साथ ही बहुत अच्छे रसायन के रूप में भी माना जाता है। इस प्रजाति के विभिन्न भाग, जैसे प्रकन्द, पत्तियाँ, फल और बीज अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग बीमारियों के इलाज एवं खाने के रूप में प्रयोग होते हैं।

अन्य उपयोग

तंत्रिका टॉनिक, गुर्दों की समस्या, एनीमिया, सामान्य दुर्बलता, गठिया, माहवारी, बुखार, त्वचा संबंधी रोगों, सरदर्द, खांसी, श्वसन विकार, गले की सूजन, चोट इत्यादि में इस पादप के विभिन्न भागों का प्रयोग किया जाता है।



वनस्पति विवरण और भौगोलिक वितरण

मेदा एक राइजोमेटस बहुवर्षीय शाकीय पौधा है। तने की लम्बाई 10–90 से.मी. होती है। इसकी पत्तियों के सिरे तीव्र कुंठित होते हैं तथा पत्तियों का आकार लीनियर, लेंसियोलेट होता है। पुष्प उभयलिंगी होते हैं। सर्दियों में पौधे का उपरी हिस्सा सूख जाता है तथा जमीन के अंदर प्रकंद पुरे जाड़ों भर निष्क्रिय रहता है। सर्दियों के समापन के साथ प्रकंद से एक नए पौधे का जन्म होता है। यह सामान्यतः नम छायादार ढलान, पत्थरों के बीच, बांज, बुरांश, देवदार आदि के जंगल, खुले घास के मैदान आदि स्थानों में पाया जाता है। इसके

फलने व फूलने का समय जून से अक्टूबर है। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में यह प्रजाति 1,800–4,000 मी. तक ऊँचाई में उत्तराखण्ड, जम्मू और कश्मीर, हिमांचल प्रदेश, पंजाब, सिक्किम व पश्चिम बंगाल (दार्जिलिंग) में पायी जाती है।

सक्रिय तत्व (active ingredients)

लाइसिन (lysine), सेरीन (serine), एस्पार्टिक अम्ल (aspartic acid), थ्रियोनिन (threonine), डायोस्जेनिन (diosgenin), बीटा-सीटोस्टेरोल (B-sitosterol), सुक्रोज (sucrose), शर्करा (glucose) आदि कुछ सक्रिय तत्व इस प्रजाति में पाए जाते हैं।

संकट

निवास स्थान के प्राकृतिक गुणों में गिरावट और अन्य जैविक हस्तक्षेप, चराई, अधिकतम दोहन और स्थानीय लोगों के बीच जागरूकता की कमी के कारण इस पादप प्रजाति पर अत्यधिक संकट आ गया है जिसके कारण यह अपने निवास स्थानों पर बहुत कम मात्रा में पाई जाती है।

प्रजाति का अध्ययन

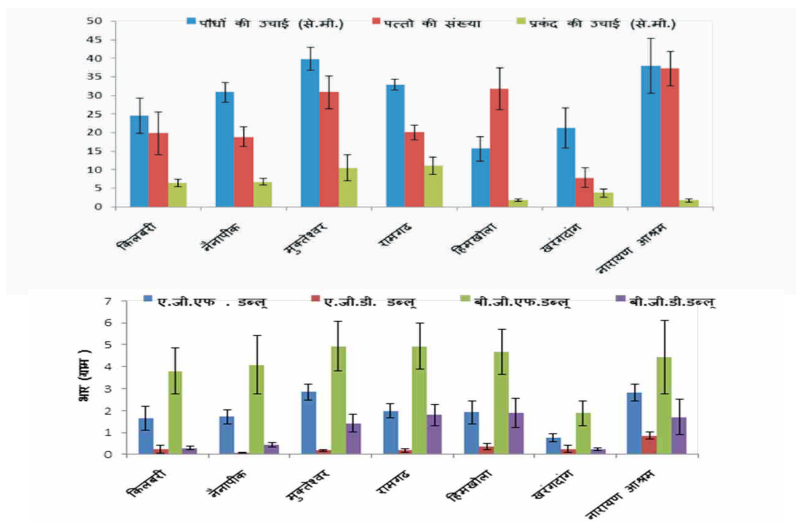
अध्ययन क्षेत्र

मेदा के पौधों को कुमाऊँ पश्चिम हिमालय क्षेत्र, उत्तराखण्ड, भारत के विभिन्न जगहों (तालिका 1) में इसके शारीरिक भिन्नताओं (रूपतामक) व रसायनों के अध्ययन के लिए मई-अगस्त माह में एकत्र किया गया। विभिन्न रूपतामक मानकों के (morphological parameters) के लिए 5 पौधे हर एक आबादी से लिये गए और संबन्धित डेटा जैसे पत्तियों की संख्या, पौधे की ऊँचाई, अन्दर ग्राउन्ड फ्रेश वेट, बिलो ग्राउन्ड फ्रेश वेट, अर्ध ग्राउन्ड ड्राई वेट, बिलो ग्राउन्ड ड्राई वेट, राइजोम लम्बाई को प्रयोगशाला में लिया गया (चित्र 2)। फाइटोकैमिकल अध्ययन के लिए प्रत्येक आबादी के 10 राइजोम को उनकी उपलब्धता के आधार पर एकत्र किया गया। राइजोम को सुखा कर उन का पावडर बनाया गया तथा 80% मिथेनॉल में उपचारित किया गया ताकि उसमें उपलब्ध पोषक तत्व की मात्रा की जाँच कि जा सके (चित्र 1)।

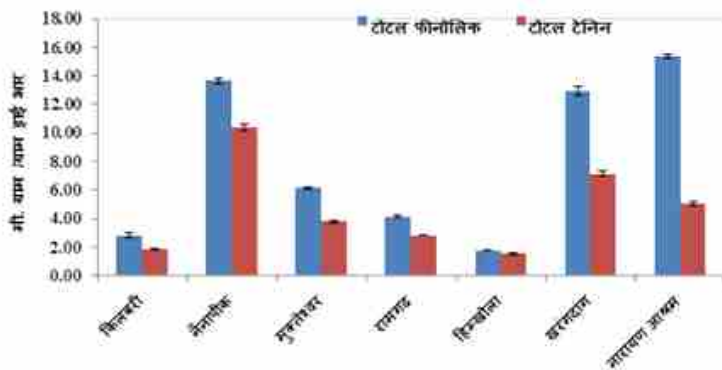
तालिका-1: पादप एकत्रीकरण की जगहों का विस्तृत विवरण।

क्र०स०	संग्रह क्षेत्र	जिला	समुद्र तलसे उचाई (मी.)	अक्षांस (उ०)	देशान्तर (पू०)
1	किलबरी	नैनीताल	2088	29°25.283'	79°26.299'
2	नैनापीक	नैनीताल	2216	29°25.240'	79°26.256'
3	रामगढ़	नैनीताल	2265	29°26.034'	79°36.088'
4	मुक्तेश्वर	नैनीताल	2319	29°28.500'	79°38.730'
5	हिमखोला	पिथौरागढ़	2368	30°00.199'	80°37.954'
6	नारायण आश्रम	पिथौरागढ़	2457	29°58.060'	80°39.01'
7	खंरगढाँग	पिथौरागढ़	3223	30°02.082'	80°38.927'

जनसंख्या में आकारिकी संबंधी गुणों का अध्ययन, प्रजातियों के विकास प्रदर्शन और बायोमास का आँकलन करने के लिए एक महत्वपूर्ण मापदंडों, जैसे पौधे की ऊंचाई, पत्ती संख्या, राइजोम लंबाई और बायोमास से संबंधित आंकड़े लक्षित आबादी के बीच व्यापक विविधताओं को दर्शाता है। इसी तरह फिनॉल और टेनिन भी आबादी के बीच विविधताओं को दर्शाते हैं। यदि संपूर्ण रूप से बात की जाये तो रूपतामक मानकों के लिए नारायण आश्रम व मुक्तेश्वर की आबादी को अच्छा कहा जा सकता है तथा बायोमास के लिए रामगढ़, मुक्तेश्वर, हिमखोला व नारायण आश्रम को बाकी आबादी की तुलना में बेहतर कहा जा सकता है। टोटल फेनोलिक सबसे अधिक मात्रा में नारायण आश्रम की आबादी में पाया गया वहीं नैनापीक की आबादी में अधिक रिकॉर्ड किया गया। इस तरह की भिन्नता का कारण विभिन्न जलवायु परिस्थितियों, पारिस्थितिकी में अंतर, आनुवंशिक अंतर को माना जा सकता है।



चित्र 1: मेदा की विभिन्न आबादी (populations) में (अ) रूपतामक (ब) बायोमास की मात्रा में भिन्नता का अध्ययन।



चित्र 2: मेदा की विभिन्न आबादी (populations) में फिनोलिक एवं टेनिन की मात्रा में भिन्नता का अध्ययन।

संरक्षण

यह प्रजाति अपने वाणिज्यिक और औषधीय मूल्यों के लिए जानी जाती है, इसीलिए, इसकी उचित पहचान, संरक्षण और व्यावसायिक खेती के लिए उचित विधि तैयार करने की आवश्यकता है। रूपात्मक, बायोमास व पौधे में निर्मित विशेष माध्यमिक मेटाबोलाईट्स के आधार पर आबादी का चयन कर बहिस्थाने संरक्षण की विधि से राइजोम के छोटे-छोटे टुकड़ों व बीजों द्वारा पौधों को कई गुणा बढ़ाया जा सकता है। वर्तमान में प्रजाति की प्राकृतिक स्थिति जानने के लिए मोनिटरिंग कार्यक्रम चलाये जाने की आवश्यकता है लोगों में इस पादप प्रजाति के प्रति लगाव व जागरूकता पैदा करने के लिए जागरूकता कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाना चाहिये। जिससे की प्रकृति में इस पादप प्रजाति को संरक्षित किया जा सके।

आभार: यह अध्ययन पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के 'बॉटनीकल गार्डन स्कीम' के तहत वित्त पोषित परियोजना के तहत किया गया, हम मंत्रालय से मिले इस सहायता हेतु आभार व्यक्त करते हैं।

परम्परागत खाद्य फसल मडुवा: वर्तमान आवश्यकता एवं भविष्य परिदृश्य

मुकेश देवराड़ी, डी०एस० बिष्ट, देवेन्द्र सिंह चौहान, कमलेश चन्द्र एवं डा० डी०एस० रावत
गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसका कृषि उत्पादों की दृष्टि से वैश्विक स्तर पर दूसरा स्थान है। वैज्ञानिक विधियों के उपयोग से यह सब सम्भव हो पाया है। यदि इस दृष्टि से हम हिमालय पर्वतीय क्षेत्रों को देखें तो पाते हैं इन क्षेत्रों में आज भी अधिकांशतः परम्परागत कृषि ही की जाती है। वस्तुस्थिति को समझने हेतु यहां पर उत्तराखण्ड का एक अध्ययन प्रस्तुत लेख में दिया जा रहा है। 9 नवम्बर 2000 को भारत के 27वें राज्य के रूप में उत्तराखण्ड का गठन किया गया था जिसकी 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अपनी आजीविका हेतु कृषि कार्यों में संलग्न है। राज्य में उगायी जाने वाली फसलों को खरीफ एवं रवि दो भागों में बाँटा जाता है खाद्यानों की दृष्टि से राज्य में गेहूँ (30.91%) चावल (25.51%) एवं मडुवा (12.32%) प्रमुख खाद्य फसलें हैं जिसमें धान एवं मडुवा खरीफ व गेहूँ रवि फसलों के अर्न्तगत बोया जाता है। खरीफ फसलों की जैव विविधता रवि फसलों की अपेक्षा बहुत अधिक है। जिसमें धान एवं मडुवा मुख्य फसलें हैं।

पारम्परिक खाद्य मडुवा

प्राचीन काल से ही मडुवा हिमालय क्षेत्र के निवासियों का मुख्य भोजन रहा है माना जाता है कि मडुवा इस क्षेत्र की सबसे पुरानी फसलों में से एक है जबकि गेहूँ इस क्षेत्र में बाद में उगायी जाने लगी। मूलरूप से मडुवा को अपनी पहचान भारत एवं अफ्रीका से ही मिली है भारत के अनेकों राज्यों में मडुवा उगाया जाता है इसे गुजरात में बाबला, महाराष्ट्र में नाचणी, हिमाचल में कोदरा, बंगाल में मारवा तथा दक्षिण के भागों में रागी, गागुल और कोदो के नाम से जाना जाता है। सम्पूर्ण विश्व में मडुवे की 117 प्रजातियाँ ज्ञात हैं इन प्रजातियों में पखलडिया, नागचूनी, छ मासी, डुढकिया, कादरया, मंडीणा व झालुरिया आदि उत्तराखण्ड के हिमालय क्षेत्रों में आज भी पायी जाती हैं। उत्तराखण्ड के ग्रामीण अंचलों के असिंचित क्षेत्रों में आज भी मडुवा एक मुख्य फसल है जो इस क्षेत्र की खाद्य सुरक्षा का प्रतीक माना जाता है। उत्तराखण्ड में वर्ष 2016-17 में 1,12,881 हैक्टेअर क्षेत्रफल में 1,55,723 मी.टन मडुवा उत्पादित किया गया जिसका औसत उत्पादन 13.80 कुन्तल प्रति हैक्टेअर था। उत्तराखण्ड में जनपदवार मडुवे का उत्पादन तालिका-1 में दिखाया गया है।



- ? अंग्रेजी नाम – फिंगर मिलेट
- ? वैज्ञानिक नाम—एल्युसाइना कोराकोना
- ? उत्तराखण्ड में बोने का समय— मई—जून
- ? कटाई का समय – सितम्बर—अक्टूबर
- ? फसल अवधि – 150 –160 दिन

तालिका-1—उत्तराखण्ड के पर्वतीय जिलों में मडुवा उत्पादन (2014–15) ।

जनपद	क्षेत्रफल	उत्पादन मी.टन
अल्मोडा	33569	40898
बागेश्वर	6374	8455
चम्पावत	4336	6405
नैनीताल	2374	3561
पिथौरागढ़	7227	10270
चमोली	10058	16579
देहरादून	1966	3451
पौड़ी गढ़वाल	19758	25075
रूद्रप्रयाग	7005	11464
टेहरी गढ़वाल	12131	17105
उत्तरकाशी	5275	9233

मडुवा एवं मिश्रित फसलें

खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से मडुवा एक महत्वपूर्ण फसल है जिसके साथ आज भी लगभग बारह प्रकार की फसलें उगायी जाती हैं जिसे स्थानीय भाषा में बारहनाजा फसल प्रणाली कहा जाता है। विषम भौगोलिक परिस्थितियों, सांस्कृतिक परिवेश, असमान्य वर्षा तथा एक ही खेत में अधिक उत्पादन लेने हेतु मडुवा के साथ भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग फसलों का मिश्रण देखा जाता है जो निम्न हैं— चौलाई, ओगल, ज्वार, भट्ट (काल एवं सफेद) रेंस, लोबिया, मक्का, गुरुश, तोर, भंगजीरा, संण, मूंग, उर्द, राजमा, गहत, मादिरा मूली, मक्का आदि प्रमुख हैं। परम्परागत कृषि का यह विज्ञान इस बात को प्रमाणित करता है कि भूमि में उत्पत्ति ह्रास नियम कि क्रियाशीलता से उत्पादकता में निरन्तर गिरावट आती रहती है अतः एक ही खेत में अधिक फसलों की पैदावार लेने, भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने, खरपतवार एवं रोग नियंत्रण तथा प्राकृतिक रूप में भूमि को पुराना स्वरूप देने हेतु किसानों द्वारा एक ही खेत में विभिन्न खाद्यान, सब्जियाँ व दालों की मिश्रित खेती की जाती है। मिश्रित फसल प्रणाली का प्रत्यक्ष लाभ जहाँ एक ओर कृषकों को विभिन्न खाद्यान और पशुओं हेतु चारा उपलब्ध कराता है वहीं दूसरी ओर दलहनी फसलों की अधिकता होने से उनके जड़ों द्वारा मृदा का नाइट्रोजन स्थरीकरण स्वतः ही हो जाता है।

मडुवा के औषधीय गुण

मडुवे में कैल्शियम और फास्फोरस की अधिकता पायी जाती है जिससे इसकी रोटी को चूने की रोटी भी कहा जाता है। खनिज लवणों की अधिकता, प्रोटीन एवं संतुलित अमीनो अम्लों की उपलब्धता से मडुवा हमारे शारीरिक एवं मानसिक विकास और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होता है वहीं मडुवे में कैल्शियम की मात्रा धान और गेहूँ से क्रमशः 35 व 8 गुना अधिक होने से यह हड्डियों को मजबूती व जोड़ों के दर्द में निवारक का काम करता है। साथ ही गन्धक 0.19 प्रतिशत और जिंक 1.48 मि0ग्रा0 / किलोग्राम तत्वों की उपस्थिति से रक्त की मात्रा में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त 100 ग्राम मडुवे में 101.4 मि0ग्रा0 आयोडीन की उपस्थिति से यह शरीर में आयोडीन की मात्रा की पूर्ति भी करता है। मडुवे में विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा गेहूँ एवं धान की अपेक्षा अधिक पायी जाती है (तालिका-2)। इसके अतिरिक्त उच्च रक्तचाप नियंत्रण, पाचन शक्ति ठीक करना, मधुमेह, खांसी, दमा और सांस सम्बन्धित विकारों हेतु मडुवे का सेवन लाभदायक है।

मडुवा का आर्थिक महत्व

किसी भी फसल की आर्थिक उपयोगिता का मूल्यांकन उसके लागत लाभ विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। सामान्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में मडुवे उत्पादन में अन्य फसलों के उत्पादन से कम लागत आती है। अर्थात् किसान अल्प व्यय और कम मेहनत से मडुवे की अच्छी पैदावार ले सकता है। जापान की योशोफूमी किहात कम्पनी उत्तराखण्ड से मडुवा का आयात कर रही है जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के बेबी फूड बनाने में

तालिका: 2—पोषक तत्वों के आधार पर मडुवा की गेहूँ एवं धान के साथ तुलना

पोषक तत्व	मडुवा	गेहूँ	धान
प्रोटीन	7.30	11.80	6.80
वसा	1.30	1.50	0.50
ऊर्जा	328	346	345
रेशा	3.60	1.20	0.20
खनिज लवण	2.70	1.50	0.70
कैल्शियम	344	41.0	10.0
लोहा	3.90	3.50	1.80
थायमीयन	0.50	0.41	0.41
राईबोफ्लेबिन	0.11	0.10	0.04
लाईसिन	3.50	2.90	3.70
मिथायोलिन	3.40	1.50	2.40
सिस्टीन	2.20	2.20	1.40
आईसोल्युसिन	6.40	3.30	3.90
ट्रिप्टोफेन	1.60	1.10	1.40

किया जा रहा है। भारत में भी मडुवे से तैयार उत्पाद जैसे—सेवई, माल्ट, पापड, विस्कट, उपमा, सूप, चिप्स, चौकलेट, इडली, डोसा, केक, पुडिंग, दलिया, आर्युवेदिक दवाएँ, ब्रेड, पीजा बेबी फूड एवं उर्जावान पेय पदार्थों सहित अनेकों उत्पाद व्यवसायिक रूप से अपनाये जा रहे हैं। यदि एक सुनियोजित योजना के अन्तर्गत मडुवे के उगाने से लेकर विभिन्न उत्पादों को बनाने की सुविधा पर्वतीय क्षेत्रों में स्थापित किया जाय तो स्थानीय कृषकों को आर्थिक रूप से सक्षम बनाया जा सकता है। मडुवा निःसंदेह यह कृषकों की आजीविका का एक मुख्य साधन बन सकता है। मडुवा की पैदावार को बढ़ावा देने हेतु भारत सरकार ने वर्ष 2016—17 में 1,725 रु० प्रति कुन्तल इसका न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित किया है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय की जलवायिक परिस्थितियों को देखते हुए मडुवा आज भी महत्वपूर्ण फसल है जिसके उत्पादन में वर्षा एवं तापमान का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है साथ ही यह असिंचित क्षेत्र का मुख्य फसल होने के कारण इसके उत्पादन में रासायनिक खादों का प्रयोग नहीं किया जाता है। अतः असिंचित क्षेत्र में मृदा जैविकता बनाये रखने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। नियमित रूप से मडुवा को भोजन का हिस्सा बनाने से यह शरीर में उपयोगी पोषक तत्वों की पूर्ति कर सकता है तथा अन्य फसलों के प्रतिस्थापन का भी उचित विकल्प हो सकता है परन्तु विगत कुछ वर्षों से उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों से हो रहा निरन्तर पलायन, कृषि से लोगों की घटती रुचि, जंगली जानवरों का आतंक, सरकारी सस्ते गल्ले की दुकानों पर उपलब्ध सस्ता अनाज, लोगों का बढ़ता आर्थिक स्तर इत्यादि अनेकों ऐसे कारण हैं जिनसे वर्तमान पीढ़ी को कृषि कार्यों से रुचि हटती जा रही है जिससे मडुवे के भविष्य पर भी प्रश्न चिन्ह बना हुआ है। मडुवे के विभिन्न महत्वों को देखते हुए स्थानीय कृषक इसका पर्याप्त लाभ उठा सके इस हेतु एक सुनिश्चित योजना के अन्तर्गत मडुवे का व्यवसायिक तौर पर विकास करना आवश्यक है। ताकि कृषकों को वांछित लाभ प्राप्त हो सके। इस प्रकार जहाँ एक ओर क्षेत्रवासियों को रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे एवं पलायन में भी कमी आयेगी वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में बेकार पड़ी भूमि में भी इसकी खेती करके हिमालय के पर्यावरण को शास्वत बनाया जा सकता है।

खरसू ओक (क्वेरकस सेमीकार्पिफोलिया) में प्राकृतिक पुनर्जनन की समस्या

मीनाक्षी नेगी एवम् डा० आर.एस.रावल

गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

बांज (क्वेरकस) हिमालय के परिप्रेक्ष में एक महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति है। भारतवर्ष में बांज की 35 से अधिक प्रजातियां पायी जाती हैं। पश्चिम हिमालय क्षेत्र में, सदाबहार बांज प्रजातियां, अर्थात् क्वेरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा (बांज), क्वेरकस ग्लौका (फलियांट), क्वेरकस लेनुजिनोसा (रियांज), क्वेरकस फ्लोरिबण्डा (तिलोन्ज) और क्वेरकस सेमीकार्पिफोलिया (खरसू) प्रचुरता में पायी जाती है। इनमें से सबसे अधिक ऊँचाई में मिलने वाली प्रजाति खरसू (क्वेरकस सेमीकार्पिफोलिया) हैं। अपनी पत्तियों के रंग के कारण सामान्यतः क्वेरकस सेमीकार्पिफोलिया भूरा बांज के रूप में भी जाना जाता है। कुमायूँ में यह टैम्परेट से सब-अल्पाइन क्षेत्र (2400–3600 मीटर) के बीच मुख्य वन क्षेत्र बनाने वाली एक सदाबहार बांज प्रजाति है (चित्र 1)। यह हिमालय में पश्चिम भूटान की ओर से, वर्मा-मणिपुर सीमा पर और चीन में भी पाया जाता है।



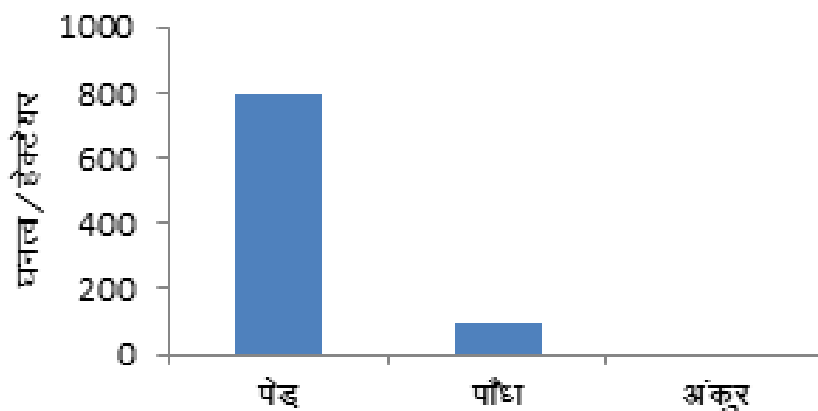
चित्र 1: (अ) खरसू ओक जंगल, (ब) खरसू ओक पत्तियां व फूल

यह एक महत्वपूर्ण प्रजाति है जो परितंत्र व स्थानीय समुदायों की आर्थिकी के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसकी लकड़ी का प्रयोग ईंधन, पत्तियों का चारा, छाल का टैनिन और बीज का जानवरों और पक्षियों द्वारा भोजन, के लिए उपयोग किया जाता है।

यह आमतौर पर बीज के माध्यम से प्रसारित होता है। हालांकि, बीज अक्सर कीड़ों द्वारा क्षतिग्रस्त हो जाते हैं और जंगली जानवरों जैसे भालू, गिलहरी, चूहों, बंदरों एवम् पक्षियों द्वारा भी खाया जाता है। खराब बीज उत्पादन एवम् पशुओं द्वारा उच्च मात्रा में भक्षण इस प्रजाति की स्वाभाविक पुनर्जीवित क्षमता को काफी प्रभावित कर रहा है। खरसू ओक में बीज परिपक्वता और अंकुरण, मानसून वर्षा के आगमन के साथ जुड़ा है। बढ़ता तापमान और मृदा में आर्द्रता की कमी के कारण मानसून की बारिश और खरसू बीज अंकुरण के मध्य का समन्वय टूटने लगता है।

हाल ही में, पश्चिमी हिमालय के कुमाऊं क्षेत्र में नैनीताल के नैना-पीक के खरसू ओक जंगल में मात्रात्मक पारिस्थितिक विश्लेषण किया गया। 2013-2015 के इस अध्ययन के दौरान, कोई भी अंकुर प्राप्त न होने की वजह से खरसू ओक की प्राकृतिक पुनर्जनन की विफलता की रिपोर्ट दर्ज की गई है (चित्र 2)। खरसू ओक की अपर्याप्त प्राकृतिक पुनर्जनन की समस्या लम्बे समय से सूचित की जाती रही है। इसीलिए इस प्राकृतिक पुनर्जनन में गिरावट की चेतावनी को गम्भीर रूप में लिये जाने की आवश्यकता है।

इस अध्ययन से यह भी निष्कर्ष निकला है कि क्षेत्रीय जलवायु परिवर्तन, पश्चिमी हिमालय के टैम्परेट ओक जंगलों में स्थायी परिवर्तन का एक कारण हो सकता है। यह परिदृश्य, बदलती जलवायु के संभव परिणामों के रुझान के साथ ही साथ मानव द्वारा जंगलों का दोहन के प्रभावों के विषय में दीर्घकालिक जांच के लिए सुझाव देता है। इसके साथ ही सामुदायिक वानिकी कार्यक्रमों में प्रबंधन रणनीति विकसित करने से भी प्राकृतिक पुनर्जनन को प्रेरित और सुनिश्चित किया जा सकता है



चित्र 2: नैनीताल में नैना-पीक के खरसू ओक के पेड़, पौध और अंकुर का घनत्व

पिन वैली नेशनल पार्क हिमांचल प्रदेश: एक पहचान

अमित बहुखण्डी एवं डा० के०सी० सीकर
गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

पिन वैली नेशनल पार्क, 31°61'40" से 32°21' 20" दक्षांश एवम् 77° 4'21" से 78° 6'19" पूर्वांश के मध्य नोर्थ-वेस्ट हिमालय के कोल्ड डेर्जट क्षेत्र में हिमांचल प्रदेश के लाहौल एवम् स्पीति जिले में स्थित है। यह घाटी प्राचीनकाल से ही बौद्ध-तिब्बती लोगों का गढ़ रही है जिसके फलस्वरूप यहां विभिन्न मोनेस्टरी एवम् स्तूप विद्यमान हैं। सन् 1987 में पिन वैली को नेशनल पार्क का दर्जा दिया गया जो कि हिमालय के कोल्ड डेर्जट के नजदीक दांगर गोम्या- लाहौल एवम् स्पीति जिलों के मध्य बार्डर का निर्माण करती है। यह पार्क समुद्र तल से लगभग 3,500 से 6,000 मीटर की ऊंचाई एवम् 675 कि.मी.² कोर जोन एवम् 1150कि.मी² बफर जोन तक फैला हुआ है।

यह क्षेत्र पूर्णतया हिमांचल प्रदेश के विभिन्न भौगोलिक, पारंपरिक वेशभूषा एवम् खान-पान को प्रदर्शित करती है एवम् अत्यधिक मात्रा में जैवविविधता को संग्रहित किये है (तालिका 1; चित्र 1 एवम् चित्र 2)। पिन नदी, पिन पार्वती पास से निकलते हुए मुद एवम् संगनम ग्राम से गुजरती है। इस घाटी में उपस्थित पर्वत श्रृंखलायें विभिन्न आकृति, रूप एवम् रंगों से परिपूर्ण हैं। साथ ही बर्फीली दर्रें बहुतायात में उपस्थित होने से विभिन्न विलुप्त होती प्रजातियां उदाहरणार्थ हिम तेंदुआ (स्नो लेपर्ड), साईबेरियन आइबैक्स आदि को रहने के लिए अनुकूल आवास प्रदान करते हैं। यह क्षेत्र अत्यधिक ठण्डा होने के कारण विभिन्न औशधीय पादप प्रजातियों उदाहरणार्थ *एकोनिटम हैटेरोफिलम*, *अर्नेबिया यूकोमा*, *इफेड्रा जिरार्डियाना*, *जुनिपेरस रिकूरवा*, *पिकोराइजा कुरवा*, *एनाफेलिस रॉयलियाना*, *डैक्टाइलोराहिजा हत्ताजरिया*, *वाल्डेमिया स्टालिक्सकाई*, *फेरुला जैस्कियाना* आदि के लिए अनुकूल है (ग्राफ 1, तालिका 2)।

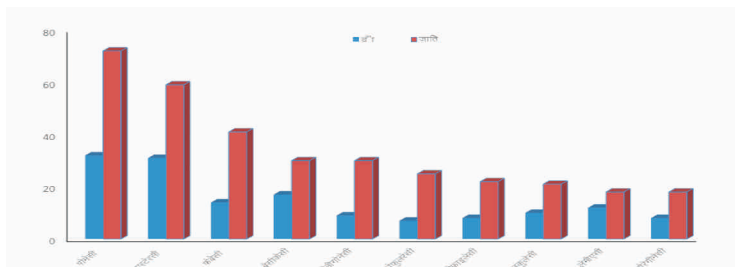
पार्क के बफर जोन में लगभग 17 ग्राम हैं जिनमें लगभग 1,600 लोग निवास करते हैं। इस वैली के अंतर्गत दो वन पंचायत कुंगरी वन पंचायत एवम् संगनम वन पंचायत आती हैं। जिसमें तांगती, तांगती योजना, तेहा, बर, सेलिंग, छिदांग, अपर गुलिंग, कुंगरी-गोम्पा, मिकिम, का फुकचुंग, खर, सगनम, तौदनम, तेलिंग एवम् मुद ग्राम सम्मिलित हैं। यहां पर वास करने वाले लोग भोटिया समाज के हैं एवम् बौद्ध धर्म में आस्था रखते हैं। ग्राम मुद में लगभग 40 परिवार एवम् इस क्षेत्र का सबसे बड़े ग्राम संगनम में लगभग 62 परिवारों का निवास है। यहां पर राजकीय हाईस्कूल एवम् प्राथमिक पाठशाला मौजूद हैं जिसमें आस-पास के गांवों से बच्चे अध्ययन हेतु आते हैं। मकानों को अत्यधिक बर्फबारी से बचाने हेतु अलग काष्ठशाला के रूप में बनाया जाता है। जिसमें मकान पूर्णतया मिट्टी से निर्मित होते हैं एवम् इनकी छतों को बल्ली, सूखी घास (टाप) एवम् मिट्टी से तैयार किया जाता है। इस प्रकार के बने मकान सर्दियों के मौसम में लोगों को ठंड से बचाते है। यहां के प्रत्येक परिवार के पास 20 से 40 बीघा खेती की जमीन है जिसमें मौसमानुसार आलू, मटर, जौ, धान आदि की खेती की जाती है। प्रत्येक परिवार मटर की पैदावार से 3-4 लाख रुपये की आमदानी प्राप्त करता है एवम् भेड़ के ऊन से नदाक (रस्सी) एवम् गलीचा बनाकर 4,000 से 5,000 रुपये तक की कीमत में बेचते हैं। भोजन के रूप में पारंपरिक अनाजों का उपयोग होता है जिसमें सत्तू (जौ का पीसा आटा), चरूल (सत्तू, चीनी, घी, छुरवा मिक्स), हलक्यू

(जौ का आटा) एवम् छुरवा (दूध से दही, दही से घी एवम् लस्सी को गर्मकर, उसको सुखाकर) आदि का उपयोग किया जाता है जो कि अत्यधिक पौष्टिक एवम् प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट से परिपूर्ण होता है। यहां के लोग इन भोज्य पदार्थों को सर्दियों के समय उपयोग हेतु संग्रहित भी करते हैं। इसके अलावा बकरी, भेड़, आदि के मीट का इस्तेमाल भी भोजन के रूप में होता है।

पिन वैली में यात्रा हेतु सर्वप्रथम मुद ग्राम जो कि समुद्रतल से 3,500 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है एवम् जिसमें राजपूत एवम् हरिजन समाज वास करता है में प्रवेश करना आवश्यक है। पिन वैली के मुद ग्राम से दो ट्रैक (1) बाबा-पास जो कि समुद्र तल से 4,890 मीटर की ऊंचाई से होते हुए लगभग पांच दिनों की यात्रा के बाद किन्नौर से जोड़ता है, एवम् (2) पिन-पार्वती पास जो कि समुद्र तल से 5,319 मीटर की ऊंचाई से होते हुए लगभग बारह दिनों की पैदल यात्रा के पश्चात् मणिकरण को जोड़ता है। यहां पर देश विदेश से अनेकों सैलानियों का आवागमन रोमांचक ट्रैक यात्रा के लिए होता है। इन ट्रैको के दौरान यहां के लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं जिसमें एक व्यक्ति 900-1,000 रुपये एवम् गाईड 1,200-1,500 रुपये प्रतिदिन कमाता है। साथ ही ग्राम मुद में होम-स्टे का प्रचलन भी है जिसके द्वारा 700-800 रुपये की धनराशि प्रतिदिन प्राप्त होती है। सरकार द्वारा यहाँ ग्रामीण रोजगार हेतु विभिन्न कार्यक्रम जैसे डैम में मजदूरी, पानी के टैंक का निर्माण, रास्ते का निर्माण एवम् मरम्मत आदि के लिए लगभग 100 दिनों का कार्य दिया जाता है एवम् जिसका मानदेय 200 रुपये प्रति दिन होता है। यहां के लोगों द्वारा याक, गधा, गाय, घोड़ा, भेड़, बकरी आदि का पालन मुख्य रूप से किया जाता है। यात्रा के दौरान गधे, घोड़े एवम् याक का मुख्य रूप से इस्तेमाल समान ढोने के लिए होता है जिससे इनको अच्छा मुनाफा प्राप्त होता है। पिन वैली नेशनल पार्क की जैवविविधता (तालिका 1) इस सम्पूर्ण क्षेत्र को भारतवर्ष में अपनी एक पहचान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है एवम् विभिन्न प्रजातियों को संरक्षित करती हैं।

तालिका 1: पिन वैली नेशनल पार्क की पादप विविधता का विवरण

समूह	कुल	वंश	जाति
टेरिडोफाइट	02	04	05
अनावृतबीजी	02	02	03
आवृतबीजी			
द्विबीजपत्री	49	191	409
एकबीजपत्री	11	46	96
योग	64	243	513



चित्र 1: पिन वैली नेशनल पार्क की मुख्य पादप कुलों का विवरण ।

तालिका 2: पिन वैली नेशनल पार्क के स्थानिक (इन्डैमिक) पादप प्रजातियों का विवरण ।

क्र० संख्या	स्थानिक पादप प्रजातियाँ
1	एनाफेलिस रॉयलियाना
2	एस्ट्रागेलस मिलेनोस्टैकिस
3	एस्ट्रागेलस मुनरोई
4	डैक्टाइलोराहिजा हत्ताजरिया
5	यूफोर्बिया तिबतिका
6	फेरूला जैस्कियाना
7	सौसुरिया जेसिया
8	वाल्देमिया स्टालिक्सकाई
9	टैनोसिटम तिबतिकम
10	वेरोनिका बाईलोबा



चित्रण 1 : (क) फेरूला जैस्कियाना (ख) वाल्देमिया स्टालिक्सकाई (ग) इफेडा जिरार्डियाना (घ) पिकोराइजा कुरवा (ङ) एकोनिटम हैटेरोफिलम (च) डैक्टाइलोराहिजा हत्ताजरिया



चित्रण :- (क) मुद ग्राम (ख) संगनम ग्राम (ग) कृषि भूमि (घ) मटर की खेती (ङ) पिन नदी
(च) भवन (छ) पार्वती शिखर (ज) बर्फीली पहाड़ियां

पर्वतीय क्षेत्र में कृषि जैव-विविधता के संरक्षण हेतु सांस्कृतिक व पारम्परिक पहल

दीप्ति तिवारी, डा० एस०एन० ओझा, डा० आर०सी० सुन्दरियाल
गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड 9 नवम्बर 2000 में गठित भारत का 27वाँ राज्य है। जिसका विस्तार 28°43' से 31°27' उत्तरी अक्षांश और 77°24' से 81°28' पूर्वी देशान्तर के मध्य 53,483 वर्ग कि०मी० है। पशासनिक दृष्टि से उत्तराखण्ड को 13 जिलों में बाँटा गया है। जिसमें 11 जिलों के कुल क्षेत्र का 86 प्रतिशत भाग पर्वतीय है एवं 2 जिले पूर्णतः मैदानी हैं। राज्य की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। यद्यपि उत्तराखण्ड प्राकृतिक संसाधनों, जैव एवं पादप विविधता, प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न है लेकिन यहाँ की विभिन्न भौगोलिक स्थलाकृति, छोटे-छोटे जोत, विरल आबादी, दुर्गम और दूरस्थ गाँव होने के कारण किसानों को अनेक विषमताओं का सामना करना पड़ता है। कुल भूमि के 62.5 प्रतिशत भाग जंगल तथा 14.02 प्रतिशत भाग में कृषि भूमि है राज्य में लगभग 73 प्रतिशत किसानों के पास 1 हे० से कम भूमि है। अधिकतर कृषि भूमि बारिश पर निर्भर है अर्थात् असिंचित भूमि की अधिकता है जिसे स्थानीय भाषा में ऊपराऊ कहते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों का केवल 9.43 प्रतिशत क्षेत्र ही सिंचाई योग्य है जो तलाऊ (सिंचित) के नाम से जानी जाती है।

पारम्परिक कृषि पद्धति द्वारा कृषि जैव विविधता का संरक्षण

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में कृषकों ने पारम्परिक कृषि के संरक्षण हेतु अनेक प्रकार की कृषि पद्धतियाँ अपनायी हैं। सामान्यतः परम्परागत रूप से कृषि को धार्मिक और सांस्कृतिक क्रियाकलापों से जोड़ते हुए जैव विविधता संरक्षण का प्रयास कई पीढ़ियों से करते आ रहे हैं। स्थानीय लोगों द्वारा विभिन्न अवसरों जैसे त्यौहार, शादी व अन्य धार्मिक कार्यों में पारम्परिक अनाजों द्वारा निर्मित भोज्य पदार्थों का उपयोग कृषि जैव विविधता संरक्षण हेतु एक सफल उदाहरण है।

पर्वतीय क्षेत्र के किसानों ने विषम भौगोलिक और पर्यावरणीय परिस्थितियाँ होने के बाद भी खाद्य संरक्षण हेतु अनेक कृषि पद्धतियों का विकास किया है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में मुख्य रूप से दो फसलें होती हैं खरीफ (अप्रैल से अक्टूबर) और रवि (अक्टूबर से अप्रैल)। खरीफ की फसल में मुख्य रूप से धान, मडुवा, रागी, कौणी, चौलाई, उगल, फाफर, सोयाबीन, काला भट्ट, गहत, उरद, लोबिया, और मौसमी सब्जियों का उत्पादन होता है, अधिकतर कृषि भूमि में धान और गेहूँ प्रधान फसल के रूप में उगाए जाते हैं (तालिका-1)। खरीफ की फसल बोते समय अधिक नमी और फसल तैयार होने के समय गर्मी और नमी की आवश्यकता होती है इसलिए मानसून के आरम्भ में यह फसल बोई जाती है रबी की फसल जाड़ों से पहले बोई जाती है ताकि शीत ऋतु के आगमन से पहले फसल उग जाए अन्यथा जाड़ों के समय में बीज बहुत कठिनता से उगते हैं। इन विपरीत परिस्थितियों का सामना करने एवं फसल उत्पादकता बनाये रखने के लिए स्थानीय किसानों द्वारा फसल चक्र पद्धतियों को पीढ़ियों से अपनाया जा रहा है। इस पद्धति के अर्न्तगत संपूर्ण गाँव की कृषि भूमि को दो भागों में विभाजित किया जाता है। इस भूमि को स्थानीय भाषा में सारी कहते हैं।

असिंचित कृषि भूमि को खरीफ की फसल के समय 2 भागों में बाँट दिया जाता है। एक भाग में धान की मुख्य फसल होती है दूसरे भाग में मडुवा मुख्य फसल होती है। इन्हीं फसलों के नाम से स्थानीय भाषा में इसे धान की सारी एवं मडुवे की सारी के नाम से जाना जाता है। मडुवे की सारी वाले भाग में मडुवा, चौलाई, ज्वार, बाजरा, मक्का, मूली व दालें (उरद, सोयाबीन, भट्ट, गहत, लोबिया, राजमा, तोर आदि) बोए जाते हैं। इस फसल की खेती को बारानाज के नाम से भी जाना जाता है। सारी के दूसरे भाग में मुख्य फसल के रूप में धान बोये जाते हैं धान के साथ कौणी, तिल, मक्का, मूली आदि भी बोये जाते हैं। यह फसल अप्रैल-मई में बोई जाती है और सितम्बर-अक्टूबर में काटी जाती है। खरीफ की फसल की कटाई के साथ ही रबी के फसल की बुआई प्रारम्भ की जाती है। जिसमें गेहूँ, जौ, सरसों, अलसी, मसूर आदि की फसल बोई जाती है तथा फसल की कटाई अप्रैल-मई में की जाती है। रबी की फसल की कटाई के साथ ही उसी खेत में मडुवा, चौलाई और दालें बोई जाती हैं। अक्टूबर में मडुवा, कौणी, चौलाई और दालों की कटाई के बाद यह भूमि 6 महिने के लिए बंजर छोड़ दी जाती है। फिर इस भूमि में अप्रैल माह में खरीफ की फसल बोई जाती है। इस फसल चक्र द्वारा प्रत्येक फसल की 18 माह में पुनरावृत्ति होती है। इस प्रकार इस फसल चक्र में दो साल में तीन फसलें प्राप्त होती हैं। सबसे अधिक उत्पादन धान्य फसलों (कुल 47) जबकि सबसे कम उत्पादकता रेशेदार फसलों (कुल 01) की है (चित्र 1)। उच्च हिमालयी क्षेत्र में जो कि समुद्र तल से 2,200 से 3,000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है तापमान की कमी के कारण वहाँ पर एक साल में केवल एक ही पैदावार होती है। सभी फसलें अप्रैल मई में बोई जाती है। यहाँ के किसान मिश्रित खेती का प्रयोग भी लम्बे समय से करते आ रहे हैं। जिसके अन्तर्गत मुख्य फसल के साथ दालों और अन्य अनाजों का उत्पादन किया जाता है। ऊपराऊ के छोटे-छोटे जोतों में बारह या उससे अधिक अनाजों का उत्पादन किया जाता है जिसे स्थानीय भाषा में बारानाज कहते हैं। बारानाज में मुख्य रूप से धान, गेहूँ, मडुवा, मक्का, चौलाई, झिंगोरा, गहत, राजमा, तिल, कौणी, उरद, सोयाबीन, काला भट्ट, आदि फसलें बोई जाती है इस पद्धति द्वारा ऊपराऊ (असिंचित) भूमि का उचित उपयोग होने के साथ ही खाद्य संरक्षण, मृदा संरक्षण, कृषि जैव विविधता संरक्षण, मृदा संरक्षण के साथ ही नमी और उर्वरता में भी वृद्धि होती है।

सांस्कृतिक और धार्मिक क्रियाकलापों द्वारा कृषि जैव विविधता संरक्षण

उत्तराखण्ड में पर्वतीय क्षेत्रों में कृषक समुदाय परम्परागत रूप से कृषि जैव विविधता को बचाने हेतु अनेक प्रयास करते आ रहे हैं। उनके द्वारा मनाए जाने वाले कृषि आधारित त्यौहार और रीति रिवाज पारम्परिक कृषि उत्पादों के संरक्षण में अहम भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक त्यौहार स्थानीय देवी देवताओं की पूजा पाठ से प्रारम्भ होते हैं जिसमें पारम्परिक कृषि उत्पादों द्वारा निर्मित व्यंजन जैसे पुए, बड़े, पूरी, और खीर आदि देवताओं को प्रसाद के रूप में चढ़ाये जाते हैं। उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र में मनाया जाने वाला त्यौहार हरेला हरियाली और उन्नति का प्रतीक है। यह त्यौहार सावन महिने के पहले दिन मनाया जाता है। हरेला से दस दिन पहले काँस की थाली में 5 से 7 पारम्परिक अनाज मुख्य रूप से मक्का, सरसों, गहत, जौ, गेहूँ, धान, उरद और भट्ट बोए जाते हैं। इस मिश्रण को घर के अन्दर अंधेरे स्थान में रख देते हैं जिससे पौधे का सतह से ऊपर वाला भाग पीला हो जाता है। यह पीला रंग अच्छी उपज को प्रदर्शित करता है। हरेला के दिन सभी पौधों को काटकर देवताओं को अर्पण किया जाता है। फिर घर के बुजुर्ग अथवा मुखिया द्वारा घर के सभी सदस्यों के सिर पर रखने के साथ उनकी दीर्घायु और उन्नति की कामना की जाती है। बीजों की गुणवत्ता को परखने के अलावा फसल की वृद्धि और पौधों की परख करने के लिए यहाँ के किसानों द्वारा अनेक त्यौहार मनाए जाते हैं जिनमें बसंत पंचमी प्रमुख है। बसंत पंचमी मुख्य रूप से रबी की पैदावार को परखने के लिए माघ महिने के पाँचवें दिन मनाई जाती है। इस दिन जौ के पौधे देवताओं को चढ़ाए जाते हैं तथा प्रवेश द्वार और पूजाघर में जौ के कुछ पौधे गोबर द्वारा लगाए जाते हैं तथा धन, धान्य और सुख समृद्धि के लिए देवताओं की पूजा की जाती है इसके अलावा अन्य त्यौहार जैसे रक्षाबन्धन, घुघुतिया, दीपावली, होली भी धूमधाम से मनाए जाते हैं जिसमें पारम्परिक और स्थानीय अनाजों द्वारा निर्मित पकवान बनाए जाते हैं। वृत् के दिनों में चौलाई के लड्डू तथा नवरात्रि में फाफर की रोटी और पकौड़े बनाये जाते हैं।

स्थानीय लोग सांस्कृतिक विविधता, स्थानीय एवं परम्परागत ज्ञान के क्षेत्र में काफी समृद्ध हैं यहाँ के लोग अपनी आजीविका के लिए किसी न किसी प्रकार से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहते हैं साथ ही उनका पारम्परिक ज्ञान के द्वारा उचित प्रबंधन और संरक्षण करते आ रहे हैं। परन्तु वर्तमान परिपेक्ष्य में सांस्कृतिक विविधता बहुत तेजी से समाप्त हो रही है। पर्वतीय क्षेत्रों की कठिन भौगोलिक स्थिति और बदलते जलवायु के कारण कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। पीढ़ियों से पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि का प्रबन्धन और संचालन मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा किया जाता था परन्तु महिला साक्षरता बढ़ने के कारण अब उनका कृषि कार्यों की तरफ रुझान कम हो गया है। निरन्तर बढ़ती हुई आबादी और कृषि की ओर युवा पीढ़ी की निरसता से खाद्य पदार्थों की आपूर्ति कठिनाई से हो रही है इन विषमताओं के कारण पुरुष वर्ग रोजगार की तलाश में शहरों की तरफ पलायन कर रहा है।

पारम्परिक अनाज एवं दालें पोषक तत्वों और औषधीय गुणों से भरपूर हैं। मडुवा में कैल्सियम आइरन और फाइबर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। काला भट्ट, गहत, कौणी आदि में प्रोटीन की भरपूर मात्रा होने के साथ विभिन्न बिमारियों जैसे पीलिया, चेचक, पथरी और बुखार में बहुत उपयोगी है। इसके अलावा पारम्परिक अनाजों में अद्वितीय प्रतिरोधक क्षमता होती है। इन फसलों को उगाने के लिए बहुत कम पानी की आवश्यकता होती है जो ऊपराऊ कृषि के लिए वरदान से कम नहीं है। परन्तु अब इस क्षेत्र में पारम्परिक फसलों का उत्पादन 37 प्रतिशत से 40 प्रतिशत कम हो गया है। अतः पारम्परिक फसलों के संरक्षण हेतु स्थानीय लोगों के सांस्कृतिक सामाजिक और आर्थिक ज्ञान पर विचार करते हुए उचित पॉलिसी और योजनाएँ बनाने की आवश्यकता है। इसके अलावा पारम्परिक अनाज और उसके उपयोग सम्बन्धी लिखित दस्तावेज विकसित किए जाने चाहिए जिससे युवा पीढ़ी को पारम्परिक जैव विविधता की गुणवत्ता सम्बन्धी जानकारी प्राप्त हो और खाद्य संरक्षण हेतु उचित योजनाओं का विकास हो सके तथा पर्वतीय क्षेत्रों की अमूल्य धरोहर का संवर्धन व संरक्षण होता रहे।

तालिका 1: बारानाजा पद्यति में उत्पादित फसलें।

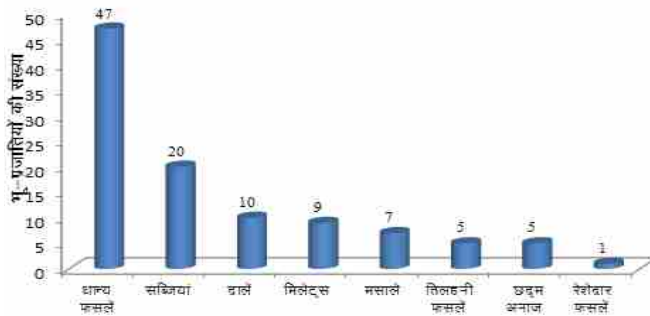
खरीफ			
क.स.	वैज्ञानिक नाम	कुल	स्थानीय नाम
1	ओराईजा सटाईवा	पोएसी	धान*
2	इल्यूसीन कोराकाना	पोएसी	कोदा*
3	एमरेन्थस फ्रमेंटेसीयस	एमरेन्थेसी	रामदाना**
4	एमरेन्थस ओलीरेसिया	एमरेन्थेसी	चोलाई**
5	जिया मेज	पोएसी	मक्का [†]
6	केनाबिस सटाईवा	केनाबेसी	भांग**
7	ईकाइनोकोला फ्रमेंटेसिया	पोएसी	झिगोंरा**
8	फेगोपाईरम इस्क्यूलेंटम	पेलीगोनेसी	उगल**
9	फेगोपाईरम टेरेरिकम	पेलीगोनेसी	फाफर**
10	मेक्रोटाइलोमा यूनिफ्लोरम	फेबेसी	गहत**
11	फेजियोलिस वल्गेरिस	फेबेसी	राजमा**
12	सिसिमम इन्डीकम	पिडेलियेसी	तिल**
13	सिटेरिया इटेलिक	पोएसी	कोणी**

14	सोरघम वल्गोर	पोएसी	जुन्याली**
15	विग्ना मुंगो	फेबेसी	उडद**
16	विग्ना रेडिएट	फेबेसी	मूंग**
17	विग्ना अम्बेलेट	फेबेसी	भोटिया**
18	विग्ना अंगीक्यूलेटा	फेबेसी	सोन्टा**
19	क्यूकूमिस मिलो	कुकुरबिटेसी	खीरा ^{\$}
20	कुकुरबिटा मैक्सीमा	कुकुरबिटेसी	कद्दू ^{\$}
21	साईक्लेन्था पिडेटा	कुकुरबिटेसी	घिंघरु ^{\$}
22	मोमोडिका चेरेन्टिया	कुकुरबिटेसी	करेला ^{\$}
23	कजानेस कजान	फेबेसी	तोर**
24	ग्लाइसीन सोजा	फेबेसी	भट्**
25	ग्लाइसीन मैक्स	फेबेसी	काला भट्**

रबी

1	ट्राईटिकम ओसटिवम	पोएसी	गेहूँ*
2	अवेना सटार्इवा	पोएसी	जई**
3	ब्रेसीका कम्पेस्ट्रीस	ब्रेसीकेसी	सरसों**
4	कोलोकेसिया एन्टीक्यूरम	फेबेसी	पिनाल ^{\$}
5	होरडियम हिमालयन्स	पोएसी	उवा जौ**
6	होरडियम वल्गोर	पोएसी	जौ**
7	लेन्स इस्क्यूलेन्टा	फेबेसी	मसूर**
8	पाइसम सटार्इवम	फेबेसी	मटर**
9	सोलेनम टूवरोजम	सेलेनेसी	आलू ^{\$}
10	जिन्जीबेर ओफिसिनेल	जिन्जीबिरेसी	अदरक ^{\$}
11	रेफानस सटार्इवस	ब्रेसीकेसी	मूली ^{\$}
12	सोलेनम केप्सीकम	सेलेनेसी	शिमला मिर्च ^{\$}

(*प्रमुख फसलें; **मिश्रित फसलें; \$घर के बगीचों (होम गार्डन) में उगायी जाने वाली फसलें).



चारा प्रजाति संग्रहण पद्धति में ऊर्जा व्यय एवं आय संरक्षण में महिलाओं का योगदान पश्चिमी हिमालय के प्ररिपेक्ष्य में

भास्कर चन्द्र जोशी, डा० के०सी० सीकर एवं डा० रविन्द्र जोशी
गो० ब० पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण एवं सतत् विकास संस्थान,
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

परिचय

भारतीय हिमालय क्षेत्र हिमालयी जैव विविधता वाले हाटस्पॉट में काफी बड़ा योगदान देता है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय हिमालय क्षेत्र (आई० एच० आर०) में मूलदेशी समुदायों की आजीविका के क्षेत्र में जैव विविधता तत्वों से बड़ी घनिष्ठता से जुड़ी हुई है। इस क्षेत्र की समृद्ध और विविध पौधों की विविधता पर मानव और पशुधन आबादी की निर्भरता को अच्छी तरह से प्रलेखित किया है। विशेषकर इस क्षेत्र के लोग बड़े पैमाने पर पशुधन को खिलाने के लिये वन आधारित चारा प्रजातियों पर निर्भर होते हैं। हालांकि कुछ मात्रा में चारा कृषि और कृषि- वानिकी तंत्र से मिलता है अकेले पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में, 279 प्रजातियाँ चारा मूल्य के रूप में जानी जाती हैं। पुराने अनुमान (पशुधन जनगणना 2003) के अनुसार, उत्तराखण्ड में पशुधन के लिए चारे की आवश्यकता (हरे और शुष्क) क्रमशः लगभग 1.97 लाख मीट्रिक टन (हरे) और 54.0 लाख मीट्रिक टन (शुष्क) प्रतिवर्ष है। इसलिए लगभग कुल 251.0 लाख मीट्रिक टन प्रतिवर्ष चारे की आवश्यकता होती है। राज्य में उत्पादित कुल चारों में से (70 प्रतिशत) चारा वनों से, (42 प्रतिशत) घास और (28 प्रतिशत) पेड़ के पत्तों से आता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वन पर चारा के लिए उच्च निर्भरता है। चारा का संग्रह हिमालय क्षेत्र के सभी हिस्सों में महिलाओं की एक प्रमुख दैनिक गतिविधि है, जिसमें बहुत अधिक समय और ऊर्जा की व्यय होती है। उन्हें चारे के लिये रोजाना काफी दूरी तय करनी पड़ती है। हालांकि, इस क्षेत्र की महिलाओं को चारे की कटाई के लिए कम से कम 1.0–2.5 किमी तक चलना पड़ता है, और सर्दियों के दौरान उन्हें कभी-कभी 3–4 किमी से ज्यादा चलना पड़ता है। इस तरह अधिक काम से न केवल उनका समय ही खर्च नहीं होता है बल्कि उनके स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। यद्यपि, इस मुद्दे को इस प्रश्न पत्र में संबोधित किया गया है और समुद्र तल की ऊंचाई के आधार पर हिमालय के गांवों के पारिस्थितिकी तंत्र में चारे के संसाधनों के स्थायी प्रबंधन, चारे के संग्रह के लिए ऊर्जा व्यय बजट का आकलन करने का प्रयास किया गया है।

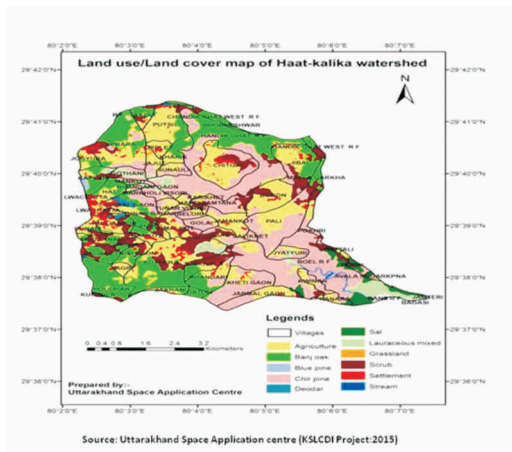


अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन पश्चिमी हिमालय के एक प्रतिनिधि जलागम (हाट-कालिका) जो कि मध्य हिमालय क्षेत्र में स्थित उत्तराखंड के पिथौरागढ़ जिले में 29°39' 22.99" उ० और 80°03' 38.93" पू० के अक्षांश के बीच स्थित, लगभग 37 किमी और समुद्र तल से ऊंचाई सीमा (600–2100 मीटर) के क्षेत्र में स्थित है। इस जलागम में कुल 45 गांव और लगभग (13,465) जन आबादी और (3,570) पशुधन की आबादी हैं (चित्र:1)

कार्यप्रणाली

पूरे जलागम में पुनर्निर्माण के आधार पर 9 अलग-अलग गांवों की पहचान की गई, तथा तीन अलग-अलग समुद्र तल से ऊंचाई के आधार पर विभाजित किया गया जिसमें से निम्न ऊंचाई वाले क्षेत्र (800–1200 मीटर) में जरमाल, कनारा, भंडारी गाव, मध्य ऊंचाई में (1200 से 1600 मीटर) कोठेरा, सिमलकोट, जजुट गांव और अधिक ऊंचाई (1600 मी से ऊपर) चिटगल, फुटसिल, उपराडा गांवों को चयनित किया गया, (तालिका:1)। प्रत्येक गांव में तीस प्रतिशत परिवारों का सवेक्षण रेन्डमली (अक्रमित) रूप से किया गया और विभिन्न ऊंचाई क्षेत्र में महिलाओं द्वारा व्यय किए गए चारा संग्रहण समय पर जानकारी प्राप्त की गयी।



चित्र:1.हाटकालिका जलागम

तालिका. 1: हाट- कालिका गांवों के बारे में सामान्य जानकारी ।

समुद्र तल से ऊंचाई मी०	गांव का नाम	परिवार	कुल जंनसंख्या	जंगल की दूरी किमी	जंगल का क्षेत्र	कुल पशु
800–1200	कनारा	52	243	1.4	12.61	80
	जरमाल	95	414	1.2	142.42	120
	भंडारी गाव	99	391	2.0	30.06	118
1200–1600	कोठेरा	183	785	1.5	132.52	174
	सिमलकोट	66	270	1.0	16.46	82
	जजुट	40	180	1.0	11.63	79
1600 से ऊपर	चिटगल	209	983	1.5	200.5	186
	फुटसिल	136	619	1.0	12.61	166
	उपराडा	200	785	1.0	40.12	154

ऊर्जा व्यय बजट

स्थानीय निवासियों (मुख्य रूप से महिला) द्वारा चारा एकत्रित किया जाने में लगने वाला समय (गोपालन एट अल; 1978) के सूत्र से अनुसारा किया गया है। इसके अनुसार समय और श्रम (महिला) द्वारा चारा संग्रहण के लिए ऊर्जा खर्च की गणना परिवार के सदस्यों द्वारा प्रति माह के आधार पर होती है। श्रम समय को कुल

मानव दिनों में परिवर्तित (भारत में एक मैनुअल श्रम समय 8 घंटे कार्य को एक दिवस के रूप माना जाता है और अंत में श्रम ऊर्जा व्यय को (मेगा जूल/परिवार/वर्ष) में परिवर्तित किया गया है। कुल खाद्य क्रियाकलाप के अनुसार, गतिशील, मध्यम या भारी कार्य से मुपिंग के आधार पर गणना की गई है। गतिशील के लिए (0.331 मेगा जूल) प्रतिदिन काम के लिए प्रति घंटे ऊर्जा व्यय, (0.383 मेगा जूल प्रति घंटे ऊर्जा व्यय) मध्यम काम और (0.523 मेगा जूल प्रति घंटे ऊर्जा व्यय) एक वयस्क महिला द्वारा भारी कार्य के लिए श्रम व्यय की गणना के लिए इस्तेमाल किया गया है। ऊर्जा व्यय के आकंलन लिये पहाड़ी क्षेत्रों में भारी कार्य को प्राथमिकता दी गई है।

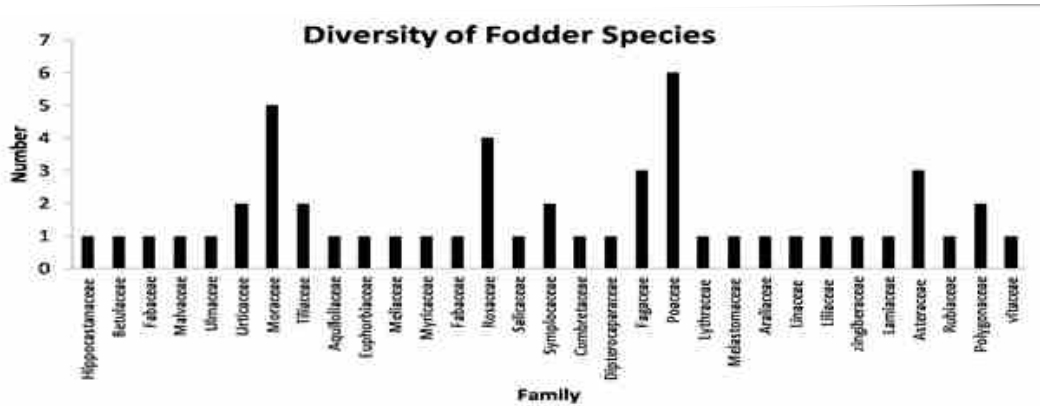
महिला द्वारा चारा से आय संरक्षण में योगदान का मूल्यांकन

महिला द्वारा आय योगदान भारत में एक मैनुअल श्रम समय 8 घंटे कार्य को एक दिवस के रूप माना जाता है तथा 300/-रुपये प्रतिदिन मजदूरी से मूल्यांकन किया गया है।

परिणाम एवं परिचर्चा

जलागम में चारा प्रजातिया विविधता

वर्तमान अध्ययन में जलागम में 31 परिवारों के 57 चारा प्रजातियों को रिकॉर्ड किया गया है। जिनमें 29 वृक्ष, 9 झाडियां, 6 बेलें और 13 घास प्रजातियों शामिल है। परिवारों में सबसे अधिक प्रजातियां पोएसी 6 प्रजातिया, मोरेसेई 5 प्रजातियां, रोजेसी 4 प्रजातियां, फोगेसी 3 प्रजातियां, एस्टरएसी 3 प्रजातियां, टीलिएसी 2 प्रजातिया सम्मलित पाये गये। (चित्र.2)



चारा संग्रहण में ऊर्जा व्यय

मुख्यरूप से चारा संग्रहण कुमाऊं एवं गढ़वाल (उत्तराखंड) हिमालय क्षेत्र के सभी भागों में महिलाओं द्वारा दैनिक रूप से किया जाता है। स्थानीय महिलाओं को पास के वन क्षेत्र में चारे के संग्रह के लिए जाना पड़ता है और जिसके लिये बहुत अधिक समय व ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है। जलागम में वनों से हरा चारा (पत्ती-घास) चारा संग्रह (20.1–25.6 किग्रा/परिवार/दिन) और कृषि-वन प्रणाली के रूप में (3.4–5.5 किग्रा परिवार/दिन) किया जाता है। वर्तमान अध्ययन में जलागम में कुल 251.04–439.32 (मेगा जूल/परिवार/वर्ष) तक चारे के लिये ऊर्जा खर्च का आकंलन किया गया है। यह भी ज्ञात हुआ कि जलागम के निचले क्षेत्र में महिलाएं चारे के संग्रह के लिए अधिक ऊर्जा व्यय करना पड़ता है जो कि 251.04–439.32 (मेगा जूल/परिवार/वर्ष) है। मध्य क्षेत्र के लिए ऊर्जा खर्च सीमा (238.0–351.45 (मेगा जूल/परिवार/वर्ष) उच्च क्षेत्र में (263.59–376.56 (मेगा जूल/परिवार/वर्ष) सीमा दर्ज कि गई है अधिक विवरण (तालिका:2) में दिया

गया है। विगत अध्ययनों में ने गढवाल हिमालयी क्षेत्र में ऊर्जा व्यय कमशः 364.84–620.05 (मेगा जूल/परिवार/वर्ष), 832.78– 1192.44 मेगा जूल/परिवार/वर्ष) दर्ज कि गई है। जो कि वर्तमान अध्ययन की तुलना में अधिक है।

तालिका. 2: जलागम में चारा संग्रहण पद्धति में ऊर्जा व्यय बजट (मेगाजूल/परिवार/वर्ष)।

समुद्र तल से ऊंचाई मी०	गाव का नाम	जंगल की दूरी किमी	हरा चारा (पत्ती चारे) संग्रह	खर्च समय प्रतिदिन	खर्च समय प्रति माह	कुल खर्च समय	रुपये में योगदान	कुल खर्च	ऊर्जा व्यय बजट
		किमी०	किग्रा/परिवार/दिन)	घंटे/परिवार/दिन	घंटे/परिवार/माह	दिन/माह	रुपये/परिवार/वर्ष	घंटे/वर्ष	मेगा जूल/परिवार/वर्ष
800–1200	कनारा	1.4	21.7	2.0	60	7.5	18,000	480	251.04
	जरमाल	1.2	22.0	2.2	66	8.2	19,800	528	276.14
	भंडारी गाव	2.0	23.9	3.5	105	13.1	31,500	840	439.32
1200–1600	कोथरा	1.5	20.7	2.8	84	10.5	25,200	672	351.45
	सिमलकोट	1.0	20.1	2.1	63	7.8	18,900	504	263.59
	जजुट	1.0	21.1	1.9	57	7.1	17,100	456	238.48
1600 से ऊपर	चिटगल	1.5	25.6	3.0	90	11.2	27,000	720	376.56
	फुटसिल	1.0	23.5	2.1	63	7.8	18,900	504	263.59
	उपराडा	1.0	24.9	2.4	72	9.0	21,600	576	301.24

आय संरक्षण में योगदान का मूल्यांकन

हिमालयी क्षेत्र में प्रत्येक गांव चारा संग्रहण के लिये वनों की दूरी पर निर्भर रहते हैं। यद्यपि, इस क्षेत्र की महिलाओं को चारा संग्रह के 1.0–2.4 किलोमीटर तक जाना पडता है, और सर्दियों के मौसम के दौरान उन्हें कभी–कभी 2.0–3.0 किलोमीटर से भी ज्यादा दूरी तय करनी पडती है। अपने अध्ययन के दौरान हम यह भी पाया कि महिलाएँ औसतन 1.9–3.0 घंटे/परिवार/दिन और 7.5–13.1 दिन/परिवार/माह खर्च करती है, अधिक विवरण (तालिका 2) में दिया गया है। महिलाओं द्वारा आय में योगदान का मूल्यांकन प्रतिदिन 300 रु० के रूप से करने पर यह ज्ञात हुआ कि महिलायें 18,000–31,500 रु० प्रतिवर्ष/परिवार आय संरक्षण में अपना योगदान देती हैं।

प्रतिवर्ष चारा संग्रहण – 240 दिन 8 माह/ वर्ष, आय – 300 रु०/ दिन; और ऊर्जा व्यय 0.523 मेगाजूल

संरक्षण और प्रबंधन के परिप्रेक्ष्य

वर्तमान अध्ययन में महिलाओं द्वारा चारा संग्रहण के लिए बिताए गए समय और अन्य ऊर्जा बजट जैसे डेटा सेट भी प्रदान करता है। यह डेटा सेट महिलाओं के दैनिक कार्य जैसे ईंधन की लकड़ी संग्रहण और पानी संग्रह में महिलाओं के ड्रगरीज को कम करने और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त रणनीति तैयार करने में सहायक होगा। वर्तमान अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि जलागम के निच्व ऊंचाई वाले गांवों में आस पास के क्षेत्र में चारा नर्सरी के विकास करने कि आवश्यकता है ताकि चारा संग्रहण के लिये महिलाओं के ऊर्जा व्यय में कमी आ सकें।

राजभाषा परववाड़ा के अर्न्तगत सम्मानित कविताएँ

प्रथम पुरस्कार

पर्यावरण

आवरण, आवरण, आवरण है ये पर्यावरण
भू, गगन, जल जिधर देखो, उधर है ये आवरण
प्रकृति की अद्भुत, ऋचा वन के उदित ये आवरण
ये धरा धरती कहे या भूमि, क्षिति, अचल, अविनि
जननि है ये नीर की, सिंचत करे वट और विटप
अनगिनत का आवरण ये, कीट हो या हो पतंग
समा जाते धरा में ही, हो गया जिसका सृजन
मातृत्व से है पूर्ण ये, जब बीज इसमें डूबता
उस बीज से पादव सृजित हो सजल होकर झूमता
अंबु की गाथा अजब जो कलकलाकल बह चला
नद, सरोवर या समुंदर, हर तरफ वह कह चला
जो भी है मुझमें समाहित जीव हो या जंतु हो
ध्यान रखता हूँ मैं सबका, जो भी मुझमें विहित हों
प्राण हूँ इस जगत का में, दूर न रह पाओगे
मत करो मुझको यूँ मैला, जीवित न तुम रह पाओगे
नीर बिन कुछ भी नहीं संभव समझ तो जाओ तुम
वाष्प या बादल बिना इक अन्न तुम ना पाओगे
फिर बयार आगे बढ़ी, जो उस के साथ थी
बोली कि क्या उस आवरण को तुम न पाना चाहोगे
जिसमें कि तुम जीवित रहो, स्वच्छंद होकर रह सको
हर वास में जो घुल सके, आनंद में तुम लीन हो
भू, अंबु और वायु के इस आवरण को प्राप्त कर
जीवित रहे चर और अचर, सब आज मिलकर शपथ कर
के प्रकृति के इस आवरण को ध्यान से सेवित करें।

— वसुधा अग्निहोत्री, वैज्ञानिक

राजभाषा परववाड़ा के अर्न्तगत सम्मानित कविताएँ

द्वितीय पुरस्कार

पौधे की प्रताड़ना

उच्च हिमालयी पर्वत पर मिला मुझे एक पौधा ।
सतरंगी पुष्प खिले थे उसमें और खड़ा था औँधा ।।
खिंच चला मैं उसकी ओर जैसे मधुचेष्टा में भंवरा ।
पर लोभ ने मुझे मधु का और ना ही मैं था भंवरा ।।
उच्च हिमालयी पर्वत पर मिला मुझे एक पौधा ।

आभास हुआ मुझे अचानक शायद यह है कोई नयी प्रजाति ।
न सोचा एक पल भी कि खत्म हो गई इसकी जाति ।।
उखाड़ लिया धरा से उसको न सोच इच्छा उस मन की ।
मन में स्वार्थ भरा हुआ था, मिलने को नयी प्रजाति उस वन की ।।
उच्च हिमालयी पर्वत पर मिला मुझे एक पौधा ।

खुश हुआ था मेरा मन एक नया जोश था तन-मन में ।
विज्ञान पुरस्कार की चेष्टा में करना था उसका अध्ययन ।।
ले आया प्रयोगशाला में उसको करने के लिए अध्ययन ।
और भूल गया उस हिमधरा को जिसमें था वह उपवन ।।
उच्च हिमालयी पर्वत पर मिला मुझे एक पौधा ।

काट दी जड़-पत्ती उसकी और डाल दिया ताप भट्टी में ।
सार तत्व निकाला उसका और रख दिया परखनली में ।।
जब अध्ययन किया उसके तत्व का मिला एक अनोखा रसायन ।
जो न था और किसी में और ना हुआ था उस पर कोई अध्ययन ।।
उच्च हिमालयी पर्वत पर मिला मुझे एक पौधा ।

आश्चर्यचकित हुआ बैठा मैं देख उस रसायन को ।
बस दर्द भरा हुआ था उसमें जैसे होता किसी मानव मन को ।।
शशायद वह जवानी में था नये पुष्प खिलाने की तैयारी में था ।
लेकिन उखाड़ फैंक दिया था उसको जैसे वह कोई अपराधी था ।।
उच्च हिमालयी पर्वत पर मिला मुझे एक पौधा ।

आभास हुआ मुझे स्वार्थ का जो उसका यह प्रताड़ना दे डाली ।
हिमालय के अश्रु से सिंच स्वार्थ तृष्णा बना वन माली ।।
कर लिया निश्चय उस पल संवर्धन कर इस प्रजाति को बचाएँगे ।
विरान बाँझ हिमधरती को फिर से स्वर्ग बनाएँगे ।।
उच्च हिमालयी पर्वत पर मिला मुझे एक पौधा ।

राजभाषा परववाड़ा के अर्न्तगत सम्मानित कविताएँ

तृतीय पुरस्कार

प्रकृति और मन

अब छोड़ मोह रे मन सखा, अब जोड़ मोह रे मन सखा ।
इन क्षण—भुगर भावनाओं से, इन अडिग अमित कल्पनाओं से ॥

उस पथ के शूल से, पथिक के हर उसूल से ।
रज के मूल रूप से, उस धरा के धूल से ॥
अब छोड़ मोह रे

उस घोर घटा की छटा से, उस छटा की धरा पर हर अदा से ।
उस घटा की बरसात की रात से, सुबह—सुबह ओस की हर बात से ॥
अब छोड़ मोह रे

मन की उद्वेगनाओं के विहाग से, लहलहाते खेतों के राग से ।
सूरज की गर्म आंच से, खेत खलिहानों में फसलों की आंठ से ॥
अब छोड़ मोह रे

वृक्षों के अमूल्य मोल से, उस मोल के मूल से ।
मूल के इस रूप से, वृक्ष के हर फूल से ॥
अब छोड़ मोह रे

उस पवन की मन्द सुगन्ध से, उस सुगन्ध की मकरंद से ।
इस मकरंद के गुंजन से, इस गुंजन के हर स्वर व्यंजन से ॥
अब छोड़ मोह रे

मानव के हर रूप से, पर्यावरण के मूल रूप से ।
मानव के हर जज्बात से, प्रकृति की हर बात से ॥

अब छोड़ मोह रे मन सखा, अब जोड़ मोह रे मन सखा ।
इन क्षण—भुगर भावनाओं से, इन अडिग अमित कल्पनाओं से ॥

— डा. सरस्वती नन्दन ओझा,
आर.ए. (एन.एम.एच.एस.ई., टास्क फोर्स—5)

हिन्दी राजभाषा से सम्बन्धित आयोजित विभिन्न कार्यक्रम

हिन्दी कार्यशाला – 2017



नेटिंग/झापिंग प्रतियोगिता-2017



मानक वर्तनी/हिन्दी अनुवाद प्रतियोगिता-2017

